ओ३म्

दृष्टान्त-सागर
द्वितीय भाग



जिसको

लावदीपुर निवासी श्री पं० शंकरलालजी गौड के पुत्र
श्री पं० द्वारकादत्त शर्म्मा, गौडेन्द्र,
उपदेशक श्री आ० प्र० नि० स०
संयुक्त प्रान्त ने रचा

और

साहित्यरत्न वाचस्पति मिश्र हल्दौर निवासी
से शुद्ध करा कर—

म० श्यामलाल शर्म्मा आर्य्य बुकसेलर बरेली
ने प्रकाशित किया



प्रथमबार } सन् १९२१ ई० { मूल्य ॥)

Printed by C M Dayal, at the Anglo-Arabic
Press, Mall Road, Lucknow

विषय-सूची।





दृष्टान्त-सागर

द्वितीय भाग ।

ईश-स्तवन

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती, यज्ञं वष्टु धियावसुः ।

पवित्र करनेवाली, बलों से बलवती, विद्यारूपी, धनदात्री सरस्वती हमारे यज्ञ को पूरा करें ।

१—ईश्वर कहाँ है और क्या करता है

एक दिन अकबर बादशाह ने अपने मन्त्री बीरबल से प्रश्न किया कि—"बतलाओ ईश्वर कहाँ है ? और क्या करता है ?" बीरबल ने उत्तर दिया कि—"आपके प्रश्न का उत्तर एक सप्ताह में दूँगा।" शाम तक बीरबल दरबार में रहे और शाम को जब अपने गृह पर आये तो मन ही मन विचारने लगे कि क्या करना चाहिए । ध्यान में आया कि पहले अपने इष्ट मित्रों से पूछूं । यदि यह प्रश्न सुगमता से ही हल हो जाय तो बहुत अच्छा है, अन्यथा जैसा होगा देखा जायगा । इसी विचार से अपने सब इष्ट मित्रों से प्रश्न किया परन्तु उत्तर सन्तोषप्रद न होने

कारण एक दिन अपने घर से निकले और उत्तर दिशा को गमन किया। कुछ दूर जा कर देखा कि विशाल तालाब है जिस के चहुँ ओर बिना मिलमिले सघन वृक्ष हैं सब्जा और लहलहा रहा है जिसके आनन्द को (मन ही मन) अनुभव किया; अहा हा! क्याही रमणीक स्थान है, सुन्दर सुगन्ध युक्त वृक्षों के पुष्पों से सुगन्ध का आना और सुगन्ध शीतल वायु का धीरे धीरे चलना और जल का निर्मल होना और उसके अन्दर सूर्य भगवान की किरणों का प्रवेश होकर दर्पिणत होना मन को अपनी ओर आकर्षित करता था। इसी स्थान में लवलीन थे कि अपने बाईं ओर दृष्टि डाली तो एक अनाथ बच्चा दिखाई पड़ा। मन में विचारा कि इससे पुछूँ कि तू कौन है, किसका लड़का है और यहाँ कैसे आया? पास जाकर पूँछा-"ऐ लड़के! तू कौन है?" लड़के ने कहा—"मैं एक अनाथ लड़का हूँ।" बीरबल ने कहा—"तू किसका लड़का है?" इसके उत्तर में लड़के ने कहा-"कि मैं नहीं जानता, मुझे यह भी मालूम नहीं कि मैं कब और किस प्रकार लाया गया।" लड़के के सामने कुछ अनाज के दाने पड़े थे, जिनमें से वह एक एक दाना उठाता और खा लेता था। बीरबल ने कहा-"हे लड़के! तू इस प्रकार मत खा, किन्तु ऐसा कर कि इन्हें उठा और मल कर एक बार ही खा जा, तब तेरा पेट शीघ्र भर जायगा। लड़के ने कहा—"कि जनाब मौत का कुछ ठिकाना नहीं, नहीं मालूम किस स्वासे में सर पर आ धमके और मैं दाने साफ ही करता रह जाऊँ। इधर का रहूँ न उधर का। जैसा कहा है कि-"दोनों दीन से गये पाँडे भये, न मांडे।" इस लिए तो मेरा युक्ति ही ठीक है, कि एक दाना उठाया और खा लिया।" यह सुन कर बीरबल बड़ा प्रसन्न हुआ, और मन में सोचने लगा कि बादशाह के प्रश्नों का जवाब इस लड़के से लेना चाहिए, सम्भव है इसकी

समझ में आ जाय, और उत्तर दे दे। बीरबल ने लड़के से पूछा कि—"भाई एक प्रश्न मेरा है, मेरा नहीं किन्तु अकबर बादशाह का है और वह यह है कि ईश्वर कहाँ है और क्या करता है ?" लड़के ने कहा—"अच्छा इसका उत्तर मैं दूँगा आप मुझे दरबार में ले चलें।" बीरबल उसे अपने घर ले गया और भोजन क्रियाओं से निवृत्त करा उसे भोजन कराया, अच्छे वस्त्र आदि पहनाये और पुत्रवत् समझ उसे अपने घर रख लिया, अब प्रश्नों के उत्तर का दिन आया। बीरबल को फिर चिन्ता हुई, लड़के से कहा कि—"कल प्रश्नोत्तर का समय है। अब यह बतलाओ उत्तर तो तुम दोगे फिर मेरा क्या नाम होगा। बादशाह कहेंगे कि इस लड़के ने तो उत्तर दिया आपने नहीं, मुझे भरे दरबार अपनी दशा पर लज्जित और नादिम होना पड़ेगा।" लड़के ने कहा—"नहीं नहीं, मैं बतलाये देता हूँ। आप जिस समय बादशाह के दरबार में जायें और वह अपने प्रश्नों का उत्तर माँगे, तो आप कह दें कि हजूर मैंने तो आपके बड़े बड़े प्रश्नों का हल किया है, फिर यह तो प्रश्न ही क्या है, जरा से बच्चे तक इस का उत्तर दे सकते हैं।" इतना सुन कर बीरबल के मनमें आया कि लड़का कहता तो ठीक है। रात भर सो रहे, प्रातः उठ नित्यप्रति के कार्यों से निवृत्त ठीक समय पर दरबार में पहुँचे। तब बादशाह ने बीरबल से कहा—"आज हमारे प्रश्नों के उत्तर का दिन है। बतलाओ क्या जवाब लाये।" तब तो बीरबल ने कहा कि—"हुजूर मैंने आपके बड़े बड़े प्रश्नों का हल किया है, ऐसे प्रश्नों को तो बच्चे भी हल कर देते हैं।"

बादशाह—खूब कहीं बच्चे भी ऐसे प्रश्नों को हल कर सकते हैं।

बीरबल—हाँ जनाब मेरे ही पास एक अनाथ बच्चा है जो इनको हल कर सकता है।

गया। बस, ईश्वर यही करता है कि क्षण में राजा को रङ्क और रङ्क को राजा बनाते समय नहीं लगता।"

२--मनीराम को वश में करना

एक बार राजा जनक याज्ञवल्क्य मुनि के पास पधारे और कहा--"हे भगवन्! कौन उपाय करूँ जिससे मेरा मन वश में हो और हरिभक्ति मे लगे।" ऋषि ने कहा--'राजन्! बिना दक्षिणा के उपाय नहीं बताया जा सकता, इस लिए कुछ दक्षिणा दीजिए।' महाराज जनक बोले--"भगवन्! यदि आप चाहें तो मैं अपना विशाल राज्य आप को दक्षिणास्वरूप भेट कर सकता हूँ।

याज्ञवल्क्य बोले--यह राज्य तुम्हारा नहीं है, यह तो चलती फिरती माया है, यही राज्य पहले तुम्हारे पितामह के पास रहा, अब तेरे पास है, जब तेरे पितामह के पास न रहा तो तेरे पास कैसे रह सकता है और तेरा कैसे हो सकता है। अत. राज्य तेरी वस्तु नहीं है, कोई ऐसी वस्तु दान दो जो तुम्हारी अपनी हो।

राजा ने कहा--मै सारा धन आप के अर्पण करता हूँ।

ऋषि बोले--यह धन भी तुम्हारा नहीं है, क्योंकि तेरे पूर्वजों ने प्रजा से इसे सञ्चित किया है, वह तो प्रजा की धरोहर है, वह तेरा नहीं है। प्रजा का धन प्रजा का ही है, वह उस के हित में व्यय होना चाहिए, तेरा इस पर क्या अधिकार है। रक्षक को भक्षक न होना चाहिए। अत· जो दक्षिणा तू देना चाहता है, उसे मै स्वीकार नहीं कर सकता।

राजा कहने लगा--"महात्मन्! यह हाथी, घोड़े ही हैं आप इनको दक्षिणा में ग्रहण कीजिए।" ऋषि

इन पर भी तेरा अधिकार नहीं है, यह भी तू दूसरी जगह से मँगा कर अथवा पकड़ कर अपने पास रख छोड़े है आज तेरे पास है नहीं मालूम कल कहाँ जायेंगे।' अब तो राजा की आँखें खुलीं उसे दुनिया के सारे पदार्थ अपने से भिन्न प्रतीत होने लगे। फिर कहा-'मैं अपना तन आपको अर्पण करता हूँ।' ऋषि ने कहा- "तन के देने से काम न चलेगा, तन तो पंचमात्र मृत वस्तु है, इसके देने से हरिभक्ति न हो सकेगी, यदि देते हो तो हमको अपना मन दो।" राजा प्रसन्न होकर कहने लगा-'कि भगवन्! मैं अपना मन आपको अर्पण करता हूँ।' ऋषि ने कहा-"अस्तु, जाओ तुम्हें ईश्वर प्राप्ति अवश्य होगी।" राजा जनक चले गये और ईश-भक्ति में लग गये। परन्तु उन्होंने देखा कि मन पूर्ववत् ही चञ्चल है और ईश्वर से विमुख है तो फिर वह ऋषि के पास आये और कहने लगे-'अब भी ईश्वर प्राप्ति नहीं हुई, मन की अवस्था पूर्ववत् ही चली जाती है।' ऋषि ने कहा-'राजन्! तूने अभी मन को अर्पण नहीं किया, इसलिए हरि भक्ति में नहीं लगा। यदि तूने मन दे दिया होता तो फिर तुम्हारे मन में यह बात आई नहीं सकती थी कि हरि भक्ति में नहीं लगा क्योंकि जो वस्तु अपनी नहीं होती दूसरे को दे दी जाती है तो फिर उस में अपनी भावना होना नितान्त कठिन है। जब तुमने मन दे दिया तो अपनी ओर से इस में कोई विचार प्रादुर्भूत न होना चाहिये। इसलिए राजन्! जाओ और अभ्यास करते हुए मन से कहो तू मेरा नहीं है। किन्तु याज्ञवल्क्य महाराज का है।"

मन से कहते रहो तू ईश्वर का है। ईश्वर ही तेरा प्राणाधार है, ईश्वर ही तेरा सहायक है, ईश्वरेच्छा ही तेरा कर्त्तव्य है। हे मन! ईश्वरेच्छा का पालन कर, ईश्वर तेरे साथ हो, ईश्वर की छाया तुम पर हो, तू ईश्वरेच्छा से बाहर मत जा। तू ईश्वर

का और ईश्वर तेरा है। हे राजन् इस प्रकार मन से कहा जावे और उसमें एक तरंग उत्पन्न कर दी जाय तो फिर वह भी समझने लगता है कि मैं ईश्वर के आधीन हूँ। इस प्रकार इस को बारम्बार ईश्वर के समर्पण करने से और बार बार यही कहने से कि तू ईश्वर का है। मन शान्त होकर तन्मय हो जाता है उपनिषद कहती है—

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यन्ति सदश्वा इव सारथेः॥

जब मन यह समझ लेता है कि मैं ईश्वर को दे दिया गया हूं, तो वह बाह्य पदार्थों से विमुख हो ईश्वर में लग जाता है।

स्थितेषु राज्ञः परमण्डलेषु शान्तिर्भवत्येव निगृह्य विघ्नान्।
तथा हृदब्जे परमेश भक्तौ पलायते कामज सर्व द्वन्द्वम्॥

शेर—दिल बदस्त आवुर्द कि हज्जे अकबर अस्त।
अज हजारां काबा यकदिल बेहतर अस्त॥

२—एक लाख रुपये की एक बात

एक साधु ने एक शहर मे घूम कर यह आवाज लगाई, कि मैं एक बात एक लाख रुपये मे बचता हूँ। जिसको चाहिए लेले। बात क्या है मानो पारस मणि से भी बहुमूल्य है। जब किसी नगर निवासी ने उनकी बात को मोल न लिया तब वह साधु उस नगर के राजा के पास गया और दर्बार में भी वही आवाज लगा कर कहा—"ले बाबा ले, हम तेरी नगरी से जाते हैं। हमें शोक है कि हमारी बात का कोई खरीदार न हुआ।" यह कह

साधु चलने लगा, राजा ने अपने मन्त्रियों से साधु की बात खरीदने को कहा उन्होंने उत्तर दिया नहीं मालूम क्या बात है। निरर्थक एक लाख रुपया दे देना बुद्धिमत्ता नहीं है। तब राजा ने कहा नहीं, अवश्य लेना चाहिए। यह कह राजा ने फकीर को बुला एक लाख रुपया दे दिया रुपया पाने पर साधु ने कहा—

विना विचारे कोई काम न करना चाहिए।

बस यही एक बात एक लाख रुपये की है। साधु के जाने पर राजा ने अपने मकान, कोठी, बर्तन, पर्दे पुस्तकादि सब वस्तुओं पर यही वाक्य लिखा दिया। कुछ समय बाद राजा को फस्त खुलवाने की आवश्यकता पड़ी यह बात जान कर राजा के किसी शत्रु ने फस्त खोलने वाले से मिल फस्त खोलने के औज़ारों को विष में बुझवा दिया। जब वह राजा के पास गया तब राजा ने अपने हाथ के नीचे पतीली रखवा ली थी। ज्योंही उसकी दृष्टि उपरोक्त वचन पर पड़ी फिर क्या था हाथ पाँव काँपने लगे मुख पीला पड़ गया।

राजा ने उसका हाव भाव देख कर पूछा कि भाई क्या, बात है? सच सच कहदो हमने तुम्हें जीवन दान दिया। यह सुन उसने सारा वृत्तान्त राजा से ज्यों का त्यों कह सुनाया।

राजा ने अपने मन्त्रियों तथा अपने सेवक आदि पुरुषों को बुलाकर कहा—"देखो, उन एक लाख रुपयो से हमारी जान बची इस लिए विना विचारे कोई काम न करना चाहिए।"

असमीक्ष्य न कर्तव्य कर्तव्यं सुसमीक्षितम्।

विना विचारे जो करै सो पाछे पछताय।
काम बिगारै आपनो जग में होत हँसाय॥

४--डाकू गुरू

एक दिन एक सेठ का बालक सुन्दर वस्त्र-आभूषण पहने हुए घर के द्वार पर खेल रहा था, उस समय एक डाकू उसे मूर्ख जान कुछ मिठाई का लोभ देकर वहाँ से उठा लेगया और किसी सघन वन मे ले जाकर उसके सब वस्त्र आभूषण उतार कर आँखो से पट्टी बाँध चलता हुआ, तब बालक बड़ा दुःखी हुआ और माता पिता को याद कर फूट फूट कर रोने चिल्लाने लगा। इतने में वहाँ एक गुरु आ निकले, और उसकी दशा देख कर कहने लगे-'रे बालक! क्या हुआ जो इतना रोता बिलखता है?' बालक ने आदि से अन्त तक अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया, और अपने माता पिता से मिलने की इच्छा प्रकट की। गुरू ने बालक की आँख खोल दी और कहा यदि तू हमें कुछ दे तो तुझे तेरे घर पहुचा दे।

बालक ने कहा—"महाराज मेरे पास तो कुछ है नहीं हाँ मेरे माता पिता धनी हैं वे आप को अवश्य कुछ देंगे आप मुझे वहाँ पहुँचा दीजिए।" गुरू ने कहा-'यह तो हम नहीं मानते।' कारण यह था कि गुरु को उस के घर का पता ज्ञात न था, चाहते थे जो कुछ मिल जावे वही अच्छा है। जब बालक ने देखा कि गुरू जी नहीं मानते तो एक अँगूठी जो उसके हाथ मे शेष रही थी, झट उतार कर देदी। गुरु जी ने अँगूठी लेली और जगल में बैल की पूँछ जो वहीं पास ही चर रहा था बालक के हाथ में पकड़ा दी और कहा पूछ को छोड़ना मत यह तुमको तुम्हारे घर पहुँचा देगा। बालक दिन भर बैल की पूँछ पकड़े पकड़े फिरता रहा। बैल कभी झाड़ी, काँटो मे जाता, ठीक मार्ग पर नहीं चलता था जब सरदी और थकावट से बिचारा बालक अत्यन्त

दुखी होगया तो उसने विचारा कि चार तो पके यहाँ बहुत जल्दी ले आये थे परन्तु इसे इतनी देर घूमते हो गई घर अभी तक न आया। बिचारे बालक ने बैल की पूँछ छोड़ दी।

भूख प्यास से व्याकुल हो माता पिता को याद कर दिन भरके दुःखो को सोच बालक फूट फूट कर रोने लगा, तब वन के एक सिद्ध तपस्वी ने उस पर दया करके पूछा—"हे बालक! तू क्यो रोता है?" बालक अपना सारा दुखड़ा उस तपस्वी के आगे रोया, और रोते रोते उस महात्मा के पावो पर गिर पड़ा। महात्मा उस की दशा देख और सुन कर बड़े अधीर हुए। एक तो अँधेरी रात्री का समय जिसमें अन्धकार के कारण कुछ सूझता ही न था, दूसरे बनैले पशु सिंह आदि का भयकर नाद, तीसरे बालक हीन दशा म अत उस महात्मा ने विचारा कि इस समय बालक को इसके स्थान पर नहीं पहुँचा सकते रात्रिभर इसे सुरक्षित स्थान में रख, प्रात काल सूर्योदय होने पर इसके मकान पर पहुँचा देंगे।

महात्मा ने बालक से कहा—"कि ऐ बालक! इस समय एक तो अँधेरी रात है तुझे मार्ग नहीं सूझ पड़ेगा, दूसरे तेरा शरीर शिथिल हो रहा है, तीसरे भयकर पशुओ का डर चौथे मार्ग कठिन है। इस लिए उचित यही है कि एक वृक्ष पर चढ़जा, रात्रि बीतने पर सूर्योदय हो, तब घर पहुँचा दूँगे।

दार्ष्टान्त—यह है कि कपट वेषधारी लोग भोले भाले लोगो को बहकाते हैं और कहते हैं कि भाई यदि गुरु लोभी हो तो वामन समान है, यदि कामी हो तो कृष्ण के समान, यदि क्रोधी हो परशुराम के तुल्य समझो। बस जहाँ ऐसी कपटी दो चार बातें

साथ हो लिए, कुछ दिन तो जब तक इनका मतलब सधता रहा साथ रक्खा, जब अपना स्वार्थ काम सधते देखा तभी छोड़ दिया, फिर उन विचारे लोगों को धक्के खाने के सिवा और कुछ नहीं मिलता।

प्रियपाठक ! यही तो दिन के डाकू हैं। चेले के हाथ में से जो कुछ बन पड़ा ऐंठा फिर यदा वेद की पूछ हाथ में दे दी। किसी के हाथ में रुद्राक्ष की माला, किसी के तुलसी की, किसी के मुद्रा डाल दी और कह दिया बस जाओ मौज करो। अब सिवाय धक्के खाने, दुर दुर फिट फिट करने के दूसरा उपाय नहीं जो आराम से बैठ सकें। और इस खाना खराबी से बचें। इसलिए—

पाखण्डिनो विकर्मस्था न्वैडालव्रत्ति काञ्छठान।
हैतुकान्वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥

वेद विरुद्ध कर्म करनेवाले, झूठ बकनेवाले तथा बगुला और बिडाल की वृत्ति रखने वाले नकलची गुरुओं का वाणीमात्र से भी सत्कार न करना चाहिए।

आतम भेद बिन फिरे भटकते, सब धोखे की टाटी में।
कोई धातु में ईश्वर मानत, कोई पत्थर कोई माटी में ॥
वृक्ष कोई जल में कोई, कोई जंगल कोई घाटी में।
कोई तुलसी रुद्राक्ष कोई, कोई मुद्रा कोई लाठी में ॥
भगत कबीर कोई कह नानक, कोई शंकर परिपाटी में।
कोई नीमार्क रामानुज है, कोई बल्लभ परिपाटी में ॥
कोई दादू कोई गरीब दासी, कोई गेरू रंग की हाटी में।
कहै आज़ाद भेष जो धारे, चले नरक की घाटी में ॥

५—एक स्त्री की बुद्धिमत्ता

एक नगर में भजनलाल नामक एक सेठ रहता था। दुर्योग से उनके कोई संतान भी न थी। कंजूस वह इतना था कि धनवान् होते हुए भी अपने पास नौकर तक न रखता था। परन्तु भाग्य से उन्हें एक चतुरा स्त्री ब्याही गई थी। एक बार रात को बारह बजे सेठ जी के मकान में चोर इस विचार से घुसे कि सेठ जी को मार कर माल ले नौ दो ग्यारह हो जावें। जब सेठ जी को वे चोर मारने लगे तब बुद्धिमती सेठानी ने कहा—"भाई तुम इन्हें मारो मत, चलो मैं तुम्हें तहखाना बतलाए देती हूँ।" बस चोरों को और क्या चाहिए था, सेठानी के पीछे पीछे चल दिए। सेठानी ने तहखाने के नीचे उतार इन्हें सन्दूक दिखलाए, सन्दूकों को देखकर चोर मोहित हो गये और ताली माँगने लगे। सेठानी ने कहा—"तालियाँ ऊपर रह गई हैं मैं अभी लाती हूँ।" चोरों ने कहा—"जल्द आवो।" यह सुनते ही सेठानी बाहर आई, और ऊपर से तहखाने के ढक्कन बन्द कर पुलिस को सूचना दे दी। प्रात काल पुलिस ने ढक्कन खोला और चोरों को पकड़ लिया।

और उस चतुरा स्त्री को पुरस्कार दे, चोरों को दंड दिया। ठीक है बुद्धि से ही सारे कार्य सिद्ध होते हैं।

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्।

६—सनातन धर्मियों के श्राद्ध की लीला

पहले सतयुग में चारो वर्णों का यथावत् पालन करनेवाला ऋषियों के तुल्य अपना जीवन व्यतीत करनेवाला इन्द्रजित

राजा था। उसके देश में अंग उपांग सहित चारों वेदों को जाननेवाला सुमित्र नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री जयश्री नाम वाली भी बड़ी पतिव्रता थी। दैवयोग से उन दोनों की मृत्यु हुई। स्त्री पुरुष कर्मों के वश हुए। स्त्री जयश्री ने कुतिया की योनि प्राप्त की और सुमित्र ब्राह्मण भी बैल की योनि में गया और वह दोनों अपने पुत्र के घर में ही जन्मे। सुमित्र के सुमति नाम वाले पुत्र ने अपनी स्त्री चन्द्रवती से कहा—"कि हे मनोहर हास्य करनेवाली! आज मेरे पिता की वर्षी का दिन है। इस लिए आज ब्राह्मणों को भोजन कराना उचित है, तू शीघ्र ही भोजन बना कर तयार कर।" चन्द्रवती ने पति की आज्ञा पा सुस्वादु भोजन बनाए। इतने में एक सर्प आया और खीर के पात्र में मुंह डाल कर चल दिया। यह देख कर ब्राह्मणों के मर जाने के भय से कुतिया ने उस खीर को छू दिया।

यह देख चन्द्रवती ने उस कुतिया की जलती लकड़ी से अच्छी तरह पूजा की। और दूसरी बार भोजन बना कर ब्राह्मणों को खिलाया, जूठन तक भी बाहर न डाली। इस लिए उस कुतिया को सारे दिन भूखी रहना पड़ा। रात्री को अपने पति बैल के पास जाकर बोली—"हे नाथ! आज मैं बहुत भूखी हूँ। किसी ने मुझे भोजन तक न दिया, अब तक एक ग्रास भी मुंह तक नहीं गया, इस लिए मुझे भूख बहुत सता रही है। और दिन तो मेरा पुत्र मुझे भोजन दे देता था; आज तो उसने जूठन तक भी न दी। आज खीर में सर्प का विष गिर गया सो बड़े बड़े श्रेष्ठ ब्राह्मण मर जाते यह विचार कर मैंने खीर को छू दिया, इस के बदले आज मुझे बाँध कर खूब पीटा, इस पीटने के कारण आज मेरा शरीर बहुत दुख रहा है, मेरी कमर भी टूट गई मैं क्या करूँ।"

यह सुन कर वह बैल बोला—"हे सुभगे! मैं भी आशक्त हूँ,

क्या करूँ, आज दिन भर मैं खेत में चलाया गया, और मेरे पुत्र ने मुझ भूखे का मुह बाँध कर बहुत मारा। इस ने यह श्राद्ध वृथा ही किया, क्योंकि मुझे तो आज बड़ा ही कष्ट रहा।"

मारितःस्वात्मजेनाह मुख बद्धा वुभुक्षितः ।
वृथा श्राद्धं कृतं तेन जातास्य मम कष्टता ॥

उन दोनों माता-पिता, (कुतिया-बैल) के इस प्रकार कथन को सुन कर और अपने माता पिता (कुतिया-बैल) को भोजन दिया।

पाठक ! मृतक श्राद्ध पक्षाभिमानियों को जब तक मृतक की योनि का ठीक ठीक पता न हो, तब तक यथायोग्य श्राद्ध, करना असम्भव है। इसलिये वैदिक मर्यादानुसार जीवित माता, पिता, गुरु, अतिथि आदि का श्रद्धा पूर्वक सत्कार करना ही सच्चा श्राद्ध, तथा उन्हें सर्व प्रकार से तृप्त करना ही यथार्थ तर्पण है।

माता पिता गुरुश्चैव पूजनीयास्सदा नृणाम् ।
क्रियास्तस्या ऽफलाः सर्वा यस्यैते नादृतास्त्रयः ॥

माता, पिता, गुरु की सदा पूजा करे। जो इन तीनों का आदर सत्कार नहीं करता उसकी सब क्रिया निष्फल जाती है।

क्योंकि—

यस्माता पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् ।
न तस्य निस्कृतिः शक्या कर्त्तु वर्ष शतैरपि ॥

माता, पिता जो क्लेश सन्तान पालन पोषण में सहन करते हैं उसका बदला सौ वर्ष में भी नहीं चुका सकते। परन्तु आज

विपरीत इसके माता पिता की जीवित अवस्था में विशेष न कर मृत्यु होने पर, दाल, भात से उनका स्वागत करते हैं।

७--मृत्यु और स्वप्न

एक राजा ने रात्री को स्वप्न देखा कि वह एक सिंह के भय से मैदान में भाग रहा है। दौड़ते दौड़ते उसे एक वृक्ष मिल गया और उस पर वह चढ़ गया तब कहीं उसे कुछ शान्ति मिली। परन्तु जब नीचे की ओर दृष्टि डाली तो क्या देखता है कि एक सर्प मुह खोले बैठा है और दूसरी ओर काला और श्वेत दो चूहे उस वृक्ष की जड़ को खोखला कर रहे हैं। वृक्ष के ऊपर मधु मक्खियो का एक छत्ता है ऊपर देख रहा था कि छत्ते में से मधु की एक बूंद उसके मुख में टपक गई, सारे दुख भूल गया, मधु का स्वाद ले ही रहा था कि इतने मे उसकी आँख खुल गई। अब वह सोचता है कि यह क्या स्वप्न था।

दार्ष्टान्त--वह मैदान जिसमे राजा भाग रहा था मृत्यु है. वृक्ष मनुष्य की आयु है, सर्प मृत्यु की चिन्ता है। और दो चूहे रात दिन हैं जो मनुष्य की आयु को काट रहे है। मक्खियाँ शरीर के रोग हैं। इतने कष्ट होते हुए भी मनुष्य इनको भूल जाता है, किस लिए की मधु की बूंद मुख में टपके। यह मधु विन्दु वह क्षणिक और तत्कालिक सुख है जिसके वशीभूत हो अपने सर्वस्व को मनुष्य खो बैठता है।

८--नौशेरवाँ का इंसाफ़

बादशाह नौशेरवाँ न्याय के लिए बड़ा प्रसिद्ध था। कहते हैं

कि उसने अपने मकान पर एक जञ्जीर बँधवा रक्खी थी और खुली आज्ञा थी कि जिसको भी मेरे राज्य में कुछ शिकायत हो वह इस जञ्जीर को हिलादे, उसके सुख दुख की कहानी को अवश्य सुना जायगा। एक दिन एक वृद्धा स्त्री का पुत्र बादशाह के पुत्र की गाड़ी के नीचे दब कर मर गया। वृद्धा ने उस मकान पर जाकर जञ्जीर हिलाई और अपने पुत्र के मरने की दुखभरी कहानी कह न्याय की याचना की और कहा— "जिस प्रकार मेरा पुत्र मरा है उसी प्रकार वह गाड़ीवाला भी मारा जावे।" राजा ने न्यायानुसार अपने पुत्र को मारे जाने की आज्ञा दे दी। उस समय वृद्धा का हृदय प्रेम से भर आया, राजपुत्र को उठा कर उसे छाती से लगा लिया और कहा—"कि यही मेरा पुत्र है।"

निन्दन्तु नीति निपुणाः यदि वास्तु वन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात् पथ, प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

६—सचाई

एक बार एक कबीर पन्थी ने झूठी साक्षी दे दी उस झूठ का प्रायश्चित करने के लिए सब कबीर पन्थी भूखे रहे।

इस सचाई का प्रभाव इतना गहरा पड़ा कि छत्तीसगढ़ का राजा भी कबीर पन्थियों में शामिल हो गया।

निस्सन्देह सचाई में बड़ा बल है। उपनिषदों में स्थान स्थान पर इसकी महिमा बखानी है।

सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामाः यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम् ॥

१०—सत्य

नैःस्वेनार्जयिष्यामि पुनर्न्याय प्रतिक्रियाम् ।
अनृतं नाभिधास्यामि चारित्र्यभ्रंशकारणात् ॥

राजा सत्यव्रत का यह नियम था कि जो वस्तु उसके नगर के बाजार में बिकने आती थी, यदि वह दिन भर न बिक सके तो शाम को राजा उस वस्तु को खरीद लेता था ।

एक बार एक लुहार लोहे की शनि की मूर्ति बना कर बेचने के लिए लाया और उसका मूल्य एक लाख रुपया कहा, उस मूर्ति में यह गुण बताया कि जो इसे खरीदेगा उससे धर्म, यश, लक्ष्मी आदि सब विदा हो जायँगे । जब उस मूर्ति को किसी ने न खरीदा तो नियमानुसार शाम को राजा ने एक लाख रुपया देकर खरीद लिया ।

आधी रात को जब राजा सो रहा था एक सुन्दर स्त्री ने आकर कहा—"मैं आपकी लक्ष्मी हूँ, अब आपके यहाँ शनिश्चर आ गया है, जहाँ यह होता है मैं वहाँ नहीं रहती इसलिए मैं जाती हूँ, अब मैं रह नहीं सकती ।" राजा ने यह सुन कर लक्ष्मी को विदा किया । इसी भाँति धर्म, कर्म, यश आदि भी राजा से जुदा हुए । अन्त को सत्यदेव भी आये और जाने को कहा । राजा ने खड़े होकर सत्य का हाथ पकड़ लिया और कहा—"लक्ष्मी, धर्म, यश, जायें तो जायँ परन्तु आपको मैं न जाने दूँगा ।" सत्य के न जाने से, लक्ष्मी आदि सब लौट आए ।

लक्ष्मी नहीं सर्वस्व जाये, सत्य छोड़ेंगे नहीं।
अन्धे बनें पर सत्य से सम्बन्ध तोड़ेंगे नहीं॥
निज सुत मरण स्वीकार है, पर वचन की रक्षा रहे।
है कौन जो उन पूर्वजों के सत्य की सीमा करे॥

सपदि विलयमेतु राज्यलक्ष्मी रुपरि पतत्वथवा कृपाणधारा।
अपहरतुतरां शिरः कृतान्तो मम मतिर्नमनागपैतु सत्यात्॥
सत्येन सुखं खलु लभ्यते सत्यात्तोर न भवति खलु पातकम्।
सत्यमिति द्वे अक्षरे-मा सत्यगलीकेन गूहय॥

रास्ती मूजिब रजाए खुदास्त।
कस न दीदम कि गुमशुद अजरहे रास्त॥

११—त्याग

म० गदाधर के विषय में राजा ने कहा कि यदि म० गदाधर हमारे दरबार में आवें तो हम उन्हें एक लाख रुपया देंगे। परन्तु वह अपनी विद्या और योगाभ्यास में मस्त था, राजा के यहाँ जाना स्वीकार न किया। एक बार जब घर में खाने को एक दाना भी न रहा, तो उनकी स्त्री ने हाथ जोड़ प्रार्थना की—'हे नाथ! घर में खाने को कुछ भी नहीं रहा, अतः एक बार आप राजा के दरबार में जायँ।' वह स्त्री का कहना मान कर घर से निकल नदी पर आया और केवट को पार करने के लिए कहा। केवट ने उतराई के पैसे माँगे। म० गदाधर ने उत्तर दिया कि मेरे पास तो एक पैसा भी नहीं है। केवट कहने लगा—"क्या तू ऐसा गदाधर है जो तेरे पास एक पैसा भी नहीं है और राजा तुझे

सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रामन्त ऋषयोह्याप्त कामाः यत्तद् सत्यस्य परमं निधानम् ॥

१०—सत्य

भैक्ष्येणार्जयिष्यामि पुनर्न्याम प्रतिक्रियाम्।
अनृतं नाभिधास्यामि चारित्र्यभ्रंशकारणात् ॥

राजा सत्यव्रत का यह नियम था कि जो वस्तु उसके नगर के बाजार में बिकने आती थी, यदि वह दिन भर न बिक सके तो शाम को राजा उस वस्तु को खरीद लेता था।

एक बार एक लुहार लोहे की शनि की मूर्ति बना कर बेचने के लिए लाया और उसका मूल्य एक लाख रुपया कहा, उस मूर्ति में यह गुण बताया कि जो इसे खरीदेगा उससे धर्म, यश, लक्ष्मी आदि सब विदा हो जायँगे। जब उस मूर्ति को किसी ने न खरीदा तो नियमानुसार शाम को राजा ने एक लाख रुपया देकर खरीद लिया।

आधी रात को जब राजा सो रहा था एक सुन्दर स्त्री ने आकर कहा—"मैं आपकी लक्ष्मी हूँ अब आपके यहाँ शनिश्चर आ गया है, जहाँ यह होता है मैं वहाँ नहीं रहती इसलिए मैं जाती हूँ, अब मैं रह नहीं सकती।" राजा ने यह सुन कर लक्ष्मी को विदा किया। इसी भाँति धर्म, कर्म, यश आदि भी राजा से जुदा हुए। अन्त को सत्यदेव भी आये और जाने को कहा। राजा ने खड़े होकर सत्य का हाँथ पकड़ लिया और कहा—"लक्ष्मी, धर्म, यश, जायें तो जायँ परन्तु आपको मैं न जाने दूँगा।" सत्य के न जाने से, लक्ष्मी आदि सब लौट आए।

लक्ष्मी नहीं सर्वस्व जाये, सत्य छोड़ेंगे नहीं।
अन्धे बनें पर सत्य से सम्बन्ध तोड़ेंगे नहीं॥
निज सुत मरण स्वीकार है, पर वचन की रक्षा रहे।
है कौन जो उन पूर्वजों के सत्य की सीमा करे॥

सपदि विलयमेतु राज्यलक्ष्मी रुपरि पतत्वथवा कृपाणधारा।
अपहरतुतरां शिरः कृतान्तो मम मतिर्नमनागपैतु सत्यात्॥
सत्येन सुखं खलु लभ्यते सत्यालोप न भवति खलु पातकम्।
सत्यमिति द्व्यक्षरे मा सत्यमलीकेन गूहय॥

रास्ती मूजिब रज़ाए ख़ुदास्त।
कस न दीदम कि गुमशुद अज़ रहे रास्त॥

११—त्याग

म० गदाधर के विषय में राजा ने कहा कि यदि म० गदाधर हमारे दरबार में आवें तो हम उन्हें एक लाख रुपया देंगे। परन्तु वह अपनी विद्या और योगाभ्यास में मस्त था, राजा के यहाँ जाना स्वीकार न किया। एक बार जब घर में खाने को एक दाना भी न रहा, तो उनकी स्त्री ने हाथ जोड़ प्रार्थना की—'हे नाथ! घर में खाने को कुछ भी नहीं रहा, अतः एक बार आप राजा के दरबार में जायँ।' वह स्त्री का कहना मान कर घर से निकल नदी पर आया और खेवट को पार करने के लिए कहा। खेवट ने उतराई के पैसे माँगे। म० गदाधर ने उत्तर दिया कि मेरे पास तो एक पैसा भी नहीं है। खेवट कहने लगा—"क्या तू ऐसा गदाधर है जो तेरे पास एक पैसा भी नहीं है और राजा तुझे

१४--बुद्ध और एक बुढ़िया

एक बुढ़िया का इकलौता पुत्र मर गया। उसको पता लगा कि महात्मा बुद्ध यहाँ ठहरे हुए हैं। बुढ़िया अपने पुत्र के मृतक शरीर को लेकर महात्मा बुद्ध के पास गई और कहने लगी—"भगवन् मेरे इस मृतक पुत्र को जीवन प्रदान कीजिए।"

महात्मा ने उत्तर दिया—"बुड्ढी मैं तेरे पुत्र को जीवन प्रदान कर दूँगा परन्तु तू एक काम कर वह यह कि तू थोड़ी सी राई ऐसे घर से ले आ जिस घर मे आज तक कोई मरा न हो।" बुढ़िया सारे नगर मे दर दर भटकी परन्तु ऐसा घर न मिला जिसमे कोई मरा न हो। बुढ़िया लौट कर बुद्ध के पास आई और कहने लगी—"भगवन्! मुझे कोई घर ऐसा न मिला जिस में एक न एक मृत्यु न हुई हो।" तब महात्मा बुद्ध ने कहा—"ऐ भोली बुड्ढी! यह ससार नाशवान् है कोई सर्वदा के लिए यहाँ नहीं आया। आगे पीछे सबको इस जगत से चल देना है।" महात्मा के यह वचन सुन कर बुढ़िया को परम शान्ति लाभ हुई। और वह अपने स्थान को चली गई।

> यदा मेरुः श्रीमान् नियतति युगान्ताग्नि निहतः,
> समुद्रा शुष्यन्ति प्रचुर निकर ग्राहनिलयाः।
> धरा गच्छत्यन्तं धरणिधर पदैरपि धृता,
> शरीरे का वार्ता, करिकरभ कर्णाग्र चपले॥
> वयं येभ्यो जाताः चिर परिगताः एव खलुते,
> समं यैः समृद्धाः स्मृति विषयतां तेऽपि गमिताः।

इदानीं ये ते स्मः मतिदिवममामश्च पतनान्,
गता स्तुल्यावस्था सिकतल नदी तीर तरुभिः ॥

१५–प्रकृति का बन्धन

एक राजा जिसको मोक्ष की विशेष इच्छा थी, एक महात्मा के पास गया और कहने लगा–"भगवन्! मुझे मोक्षमार्ग बतलाइये।" महात्मा ने कहा–"फिर आना।" राजा फिर गया उसे फिर आने को कहा, एक दो बार राजा फिर गया, तब भी उसने फिर ही आने को कहा। इसी प्रकार राजा जब कई बार वापस आया तो उसे अत्यन्त जिज्ञासा हुई। राजा अपने सेवकों के साथ फिर जब महात्मा के पास गया तो महात्मा ने राजा के सहित सबकी मुश्कें बांध दीं, और कहा कि–"हे राजन्! इन सबकी मुश्कें खोल दे।" राजा ने कहा—"महाराज, मैं कैसे खोल सकता हूँ मैं तो स्वयं बँधा पड़ा हूँ।" तब महात्मा ने राजा को बतलाया कि यही प्रकृति की दशा है। इसका जो उपासक होता है उसे इसी प्रकार जकड़ देती है। यदि तुम मोक्ष चाहते हो तो ईश्वर का भजन करो। प्रकृति का उपासक बनने से तुम्हारा मोक्ष न होगा। क्योंकि यह तो स्वयं जड़ वस्तु है। वह तुम्हारे बन्धनों को कैसे काट सकती है। प्रभु चिंतन ही भव बन्धनोच्छेदक है। यदि किया जाय तो करलो, अन्यथा इसी भवसागर में नाक पकड़ पकड़ गोते लगाओ।

१६–नकली पतिव्रता

किसी नगर में एक स्त्री और एक पुरुष रहता था। पुरुष ने

हैं कि सात दिन में आऊँगा। लो दो पैसे लेजाओ बाजार से आलू और घुइँया ले आओ। आज पूरी बनाऊँगी। लड़का हुक्म बजा लाया, जैसे कहा था लड़के ने वैसे ही कर दिया। तब फिर लड़के ने पूछा चाची और कुछ काम है? स्त्री बोली नहीं बेटा! बेटा भोजन करके जाना। लड़का तो कोई बहाना बना बूढ़े के पास आया और जो कुछ देखा भाला था; सब बूढ़े से आकर कह दिया।

इधर सूर्य भगवान् भी दिन भर के थके अस्ताचल को गमन करने की तयारी में हैं, उधर पतिव्रता ने सोचा कि दिन भर परिश्रम करके सारी वस्तुएँ बनाई हैं, कुछ खाकर तो देखूं। मन ही मन यह भी विचार करती गई कि कोई देख न ले जो कभी हँसी उड़े, इस लिए पहले किवाड़ बन्द कर दूँ पीछे जैसा होगा देखा जायगा। किवाड़ बन्द कर आसन बिछा लोटे में पानी ले, थाल में फिन्नी, भरी जो जो वस्तुएँ पाकशाला में बनाई थीं थोड़ी थोड़ी रक्खीं। बैठने को ही थी कि सहसा आवाज लगी, किवाड़ खोलो। स्त्री सहसा चौंक पड़ी (मन ही मन) पति तो ग्राम को गये थे यह कौन है, फिर एक आवाज लगी, किवाड़ खोलो। पति का स्वर पहचान गई, झटपट, कुछ वस्तु इधर कर कुछ उधर कर किवाड़ खोले और पुरुष से कहने लगी—"आप तो सात दिन को कहगये थे, क्या बात हुई जो आज ही वापस लौट आए।"

कहिए कैसी तबियत है। पुरुष ने कहा—"जब मैं कुछ दूर पहुँचा तो मार्ग में मुझे एक ज्योतिषी मिल गया और मुझ से कहने लगा कि आज तुम्हारी मृत्यु है; तुम जाते कहाँ हो। घर को वापस लौट जाओ।"

मुझे स्वय भी आज ऐसा ज्ञात होता है कि आज मैं अवश्य

मरूँगा। इतना कहके उसने एक लम्बी साँस लिया और श्वास से पृथिवी पर गिर मृतवत् पड़ गया। तब तो स्त्री ने कहा—"आ हो! जैसा स्वामी कह रहे थे वैसा ही हुआ। पास जाकर सिर पकड़ कर उठाया तो आप सूखे लक्कड़ के सदृश उठे. इसी प्रकार पाँव उठाया तो वही दशा। स्त्री थी चतुर उसने सोचा देखूं तो जिन्दा तो नहीं हैं, झट आँखों में उँगली करदी इन हजरत ने और विशेष प्रकार साध लिया। जब स्त्री ने समझ लिया कि यह मर ही गया, तब कहने लगी जो होना था वह तो हो ही गया अब यह सजीव तो हो ही नहीं सकते, इस लिए पहले कुछ खाले, क्योंकि दिन अस्त होगया, क्षुधा भी लगी है, 'सई साँझ के मुर्दे को कहाँ तक रोवें।' भूख में रोया भी तो नहीं जायगा।" बस किवाड़ बन्द किये आसन बिछाय, लोटे में पानी ले, जो जो अच्छे अच्छे पदार्थ बनाए थे खाने प्रारम्भ किए। इधर यह मियाँ मिट्ठू भी जीभ से पानी डाल रहे थे, और सोचते जाते थे, कि हमें भी थोड़ा सा माल मिल जाता, क्या करें पराधीन है।

स्त्री खाती जाती थी और कहती थी अहा! लड्डू तो बड़े ही स्वादिष्ट बने हैं, फिन्नी का भी क्या कहना है और तरकारी के विषय मे तो कुछ कहना ही नहीं है। चित्त मे आता है कि सब को खालूँ परन्तु नहीं एकादशी तक काम आवेंगे। सब कुछ खा पी कर किवाड़ खोल दिए और चीख कर दोनों हाथ धड़ाम से उस की छाती पर मार कर कहने लगी—"साईं स्वर्ग सिधारियाँ कुछ मैनूं भी मक्खो।" तब तो यह गुल गपाड़ा सुन कर महल्ले के पुरुष इकट्ठे हो गये कहने लगे—"क्या हुवा क्या।" इधर यह पड़े पड़े सोच रहे थे, एक दुहत्तड़ तो छाती मे मारही दिया दूसरा मार देगी तो काम तमाम हो जायगा, क्योंकि पहले तो मैं सहार गया। उधर स्त्री पुरुष इन हजरत के लिए आँसू बहा रहे

थे और कहते थे कि बड़ा बुरा हुवा, बड़ा भलामानस था अब इन की अर्थी बना 'राम राम सत्त है' की आवाज लगने लगी इस स्त्री ने फिर वही "साईं स्वर्ग सिधारियाँ कुछ मैंनू भी सद्दलो" कहा। तब इन महात्मा ने सोचा ऐसा अवसर कहाँ मिलेगा, जहाँ बहुत से स्त्री पुरुष इकट्ठे हों। कम से कम इस का चरित्र तो ज्ञात हो जायगा। तब आप उत्तर में बोले—"तौर सदा लड्डू खाइयाँ और लड्डू भी चक्खो।" लीजिए महोदय आज कल की स्त्रियों के यह ढंग हैं।

दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः॥

दुष्ट स्त्री, धूर्त मित्र, उत्तर देनेवाला नौकर, साँप वाले घर में रहना ये अवश्य ही मृत्यु की निशानी हैं।

तिरिया चरित्र जाने ना कोय, पति को मार के सत्ती होय।

१७—माता का दूध

बूँदी का इतिहास बतलाता है कि राव सूरजमल हाड़ा और राना रतनसिंह शिकार खेलते हुए बैर भाव से परस्पर लड़ कर एक दूसरे के हाथ से दोनों मारे गये। जब बूँदी में राव के मारे जाने का समाचार आया तो, उनकी साध्वी स्त्री सती होने की आज्ञा चाहने की इच्छा से अपनी सास के पास गई। तब सास ने कहा कि—"राना मेरे पुत्र को मार डाले और मेरा पुत्र राना को न मारे। यह बात नितान्त असम्भव है, क्योंकि उसको मैंने अपना दूध पिलाया था, सम्भव नहीं कि वह मेरा दूध पीकर कायर व बुजदिल बने। परन्तु हाँ, एक दिन जब वह बालक

था मैं स्नान कर रही थी और वह सो रहा था सोते सोते रोने लगा, तब एक दासी ने अपना स्तन उसके मुंह में देकर चुप कर दिया था। मैंने जब यह देखा तुरन्त उसे उलटी कराकर दासी का दूध उसके पेट में से निकाल ता दिया था, परन्तु फिर भी सम्भव है कि दासी के दूध का अंश पेट में शेष रहा हो और उसी के प्रभाव से मेरा पुत्र कायर बन गया हो, तो आश्चर्य नहीं। तुम अभी कुछ समय ठहरो दूसरा समाचार आ जाने दो।" कुछ समय पश्चात् दूत ने आकर समाचार दिया कि राव जी राना को मार स्वर्ग सिधारे हैं। यह सुन कर सास ने अपनी पुत्रवधू को प्रसन्नता पूर्वक कहा कि अब तुम सती हो सकती हो, मेरे पुत्र ने मेरा दूध लजाया नहीं।"

क्षत्राणी सदा धरती है गर्भ में बालक,
पैदा करै संसार में नर-धर्म पालक।
दीनों का बने त्राता, हो दुष्टों का भी घातक,
अन्याय निवारक हो, शुभ न्याय चालक।
ऐसा न हो क्षत्रिय तो कीट ही जानो,
जनने में वृथा कष्ट सहा मातु ने मानो।

१५--झूठा प्रेम

एक युवक साधुओं की विशेष सेवा शुश्रूषा किया करता था, एक बार एक साधु ने युवक से कहा--"बेटा! तुम होनहार हो यह संसार जो दुःख के पंजे में फँस रहा है, इसको छुड़ाने का प्रयत्न करो और इसके उपकार में लग जाओ।" युवक ने कहा--"महाराज! मैं अपने पिता माता के इकलौता पुत्र हूं, वे मुझे बिना

देखो कैसे जाचित रह सकते हैं, अभी दो वर्ष विवाह को बीते हैं, एक छोटा सा बच्चा है, स्त्री मेरी बड़ी सेवा टहल करती है, और कहती है, स्वामिन्! तुम ही मेरे प्राणाधार हो, तुम्हारे बिना मछली की तरह तड़फती रहती हूँ। तुम्हारे जीवन से मेरा जीवन है। जो कुछ हो तुम ही हो। फिर भला महाराज, ऐसे माता-पिता, स्त्री बच्चे को छोड़ना कितना पाप है, और फिर ऐसी दशा में भला कैसे मैं संसार का उपकार कर सकता हूँ।''

साधु ने कहा—बेटा! पाप उसके लिये है जो घर में संसार में अनाचार और मक्कारी सिखाने को निकलता है। फिर भी युवक की समझ में न आया।

साधु ने युवक को पहले प्राणायाम सिखाया, और कहा—कि हम तुम्हें उनके प्रेम का परिणाम दिखायेंगे, फिर देखो कि उनका तुम पर कितना प्रेम है।

एक दिन साधु ने उससे कहा—''कि आज तुम किसी रोग का बहाना कर देना और कल को प्राण चढ़ा कर पड़ जाना।'' युवक ने ऐसा ही किया और मृतवत् लेट रहा। घर के लोग रोने पीटने लगे, हाहाकार मच गया, पड़ोस के लोग भी सहानुभूति प्रकट करने के लिए आए। और कहने लगे देखो कैसा अच्छा लड़का था, अपने माता-पिता के अकेला ही था, अब इसके माता पिता कैसे जीवित रहेंगे। और यह सुन्दरी स्त्री कैसे रहेगी जो एक घड़ी भी इसके बिना व्याकुल हो जाती थी। जब साधु ने यह समाचार सुना तो साधु भी युवक के घर की ओर चल दिए, घर आकर साधु ने देख भाल कर कहा—''कि तुम्हारे लड़के को हम जीवित कर देंगे। पहले एक गिलास में दूध लाओ।'' साधु ने सबके सामने एक चुटकी राख दूध में डाली

और कुछ पढ़ने लगा। फिर साधु ने कहा—"अच्छा जो इसको पीवेगा वह तो मर जायगा, परन्तु यह जीवित हो जायगा।" इसको क्रमश माता-पिता, स्त्री आदि से कहा, परन्तु दूध पीने को कोई तयार न हुआ। मित्र मण्डल तो पहले खिसक गया, जब यह दशा देखी तो साधु ने कहा कि मैं पीलूँ तब तो सब प्रसन्न हो बोले हाँ, महाराज साधुओं का जीवन तो पर उपकार के लिए ही होता है। तब साधु ने उच्चस्वर से कहा—"सम्बन्धियों की झूठी प्रेम शृंखला में फँसे हुए युवक! ध्यान से देख कि वे तुझ को कितना प्रेम करते हैं। जिनके लिए संसार से पृथक् हुआ बैठा है। उठ इस झूठे सम्बन्ध का परित्याग कर और संसार का उपकार कर।" युवक उठ बैठा और वह संसार की भलाई में लग गया।

पाठक! शास्त्र कहते हैं कि धर्म के लिए झूठे माता-पिता को छोड़ दो और ईश्वर भक्ति करते हुए संसार सेवा में तत्पर हो जाओ।

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे नारीगृहे द्वारजना श्मशाने।
देहश्चिताया परलोक मार्गे धर्मानुगो गच्छति जीव एकः॥

१६—निर्मोही राजा

एक बार एक निर्मोही राजा का पुत्र घूमता हुआ एक महात्मा की कुटिया पर जंगल में गया, जहाँ पर उसने महात्मा से कहा—"महाराज जल पिला दीजिए।" महात्मा ने कहा—"तुम कौन हो?" लड़के ने उत्तर दिया कि—"मैं निर्मोही राजा का लड़का हूँ।"

महात्मा—क्या तुम निर्मोही राजा के लड़के हो।

लड़का–जी हाँ।

महात्मा–यह बात तो असम्भव है कि राजा भी हो और वह मोह न रखता हो।

लड़का–महाराज आप सत्य मानिए, मैं झूठ नहीं कहता, आप जाकर परीक्षा कर लें राजा निर्मोही ही है।

महात्मा–अच्छा तुम जल पिओ, अपने देश आदि का पता बतादो, मैं परीक्षा ले आता हूँ, तुम जाकर कहना नहीं।

लड़का–नहीं महाराज, जब तक आप लौट कर वापस न आवें, मैं आपकी कुटिया से नहीं जाऊँगा, फिर भला बतलावेगा कौन।

महात्मा–निर्मोही राजा के देश में पहुँचा, पूछता पूछता राजा के महल में गया। वह क्या देखता है कि वहाँ किसी को किसी से मोह नहीं है, सब अपना अपना कर्त्तव्य पालन कर रहे हैं। कोई किसी को रोकता नहीं, कोई किसी से लड़ता नहीं जिसका जिधर चित्त चाहता है उधर वे रोक टोक घूम आता है। इतने में खास ड्योढ़ी पर महात्मा पहुँचे, और देखा कि अन्दर से एक दासी निकली आ रही है, महात्मा ने कहा—

तू सुन चेरी युवराज की, बात कहूँ मैं तोय।
युवराज खायो मृगराज ने, पड़ा है आश्रम मोय॥

महात्मा ने कहा–ऐ दासी! मेरी बात सुन, तेरा जो राजा का लड़का था उस सिंह ने खा लिया है और मेरी कुटिया पर पड़ा है।

दासी ने उत्तर दिया—

न मैं चेरी युवराज की, न कोई मेरो युवराज।
प्रारब्ध के वश पड़ी, करत फिरत हूँ काज॥

संस्कृत में कहा है।

वनानि वन काष्ठानि नद्याः वहन्ति सगमे।
संयोगेन वियोगेन का कस्य परिदेवना॥

अर्थ—न तो मैं युवराज की चेरी हूँ और न मेरा कोई युवराज है। प्रारब्ध की शृंखला मे जकड़ी हुई काम कर रही हूँ, जिस प्रकार दरिया मे लकड़ियाँ वन से बह कर परस्पर मिलती हैं, पृथक हो जाती हैं, इसी प्रकार संसार मे हमारा मिलाप है। अलहदगी है। फिर अलहदगी मे दुख कैसा।

महात्मा—(मन ही मन) क्योंकि यह दासी है, इसलिए इसे राजपुत्र के मरे का रंज नहीं है। चलो, राजा के लड़के की स्त्री से कहें, उसे तो रंज होगा। जिसको सारी आयु उसके सहारे से पेट भरना है। इस लिए उसकी स्त्री से जाकर कहने लगे —

तू सुन सुन्दरी चातुरी, मम आश्रम पर जान।
हनन कियो मृगराज ने, तेरो श्री भगवान्॥

युवराज की स्त्री कहती है—

नदी पार ज्यों नाव है, बिछुड जात सब लोग।
कौन नार भरतार कौन, विधि ने किया संयोग॥

महात्मन्! जैसे नदी पार जाने के लिए नाव में मनुष्य इकट्ठे हो जाते हैं और पार जाकर सब पृथक पृथक मार्ग पर चलने लगते हैं ऐसे ही मेरा और पति का सम्बन्ध था। मरने के पश्चात् कौन किस की स्त्री और कौन किस का पति होता है। चिन्ता किस बात की, प्रारब्ध मे सम्बन्ध हुआ अब प्रारब्ध ने ही पृथक कर दिया, जो ईश्वर को स्वीकार था।

महात्मा—(फिर मन ही मन) हा ! स्त्री भी ऐसी ही निकली; जिस को अपने पति की मृत्यु का भी रंज नहीं। सम्भव है, कुछ दाल मे काला हो. चलो उसकी माता से कहें वह तो नौ मास पेट में रख चुकी है, उसको अवश्य रंज होगा, यह सोच कर महल में जाकर कहने लगे—

तू सुन रानी राव की, बात कहूँ दृढ़ होय ।
पुत्र संहारो सिंह ने, आश्रम पड़ो है मोय ॥

हे रानी ! मेरी बात सुन, तेरे पुत्र को सिंह ने मार डाला और मेरी कुटिया पर पड़ा है ।

रानी—तरुवर पर पक्षी घने, रात बितावन आयँ ।
भोर फटी उड़ जात हैं, कोऊ किसी को नायँ ॥

हे ऋषि जी महाराज ! वृक्ष पर सहस्रों पक्षी रात को विश्राम लेने आते हैं और प्रात काल होते ही उड़ जाते हैं। अपने अपने मार्ग पर हो लेते हैं, कोई किसी को पूँछता भी नहीं। एक कवि ने भी लिखा है ।

अनायाचिते मया गर्भे दैवेन संगमः कृतः ।
आयान्ति पुनर्यान्ति, का कस्य परिदेवना ॥

अकस्मात् ही मेरे गर्भ मे प्रारब्ध ने उसका मेल कर दिया ऐसे ही कोई आते हैं और कोई जाते हैं, फिर किसका रंज, शोक ! प्रारब्ध में ऐसा ही लिखा था (जब इसको भी महात्मा ने निर्मोही देखा) तो महात्मा मन मे कहते हैं ।

महात्मा—(मन ही मन) सम्भव है रानी को यह हो कि मेरे और पुत्र हो जायगा । इस लिए रंज न किया हो । चलो राजा

के पास चलें, उसको अवश्य ही रंज होगा, जिसका युवा युवराज चल बसा। राज सिंहासन का स्वामी नेत्रों से ओझल हो गया, वह तो अवश्य ही रोवेगा। अब अन्तिम निर्णय है इसकी भी परीक्षा लेनी चाहिए।

महात्मा—राजन् पुत्र आपका, खाय गयो मृगराज।
या कारण चिन्ता बढ़ी, सोच कहूँ महाराज॥

हे राजा साहब! आपके होनहार युवराज को जिसके अभिषेक का आप प्रबन्ध कर रहे थे, उसे आज सिंह ने मार डाला। मुझे कहते हुए भय लगता है, इस लिए भय खाता खाता कह रहा हूँ कि अब राज कौन करेगा?

राजा—ऋषि तप क्यों छोड़िया, काहे बढ़ाया शोग।
रैन बसेरा जगत है, सभी मुसाफिर लोग॥

हे ऋषि जी! आप तप छोड़ कर क्यों भागे, और क्यों रंज कर रहे हैं। क्या आप को मालूम नहीं है कि यह जगत मुसाफिर खाना है, रात्री व्यतीत करने का स्थान है। इसी लिए एकत्रित हुए हैं, कि रात्री व्यतीत करके सभी अपना अपना मार्ग लेंगे। क्या मुसाफिर खाने से जाते समय किसी को रंज होता है? फिर रंज किस बात का?

मातुलो यस्य गोविन्दः पिता यस्य धनुर्धरः।
अभिमन्युः हताः प्राणाः का कस्य परिदेवना॥

जिसका मामा कृष्ण था, और पिता अर्जुन था। ऐसे वीर का पुत्र अभिमन्यु भी जब प्राणों को न बचा सका अर्थात् मरगया, तो कौन किसके लिए किसका रंज करे।

यह चला चली का संसार है, इसका रंज न करना चाहिए जाओ ऋषि जी रंज को छोड़ो और कुटिया पर जाकर परमात्मा का भजन करो। ऐसी बातों का विचार ही न किया करो। जिसको ईश्वर चाहेगा वही गद्दी का स्वामी होगा। हम तो परमात्मा की आज्ञा पालन करते आए हैं, सो जब तक प्राण हैं आज्ञा का पालन करते रहेंगे। इस बात को सुन कर महात्मा दंग रह गया। और लज्जित होकर युवराज की बात सच मान कर राजा से कहने लगा—"हे राजन्! मैंने जो कुछ आप से कहा है झूठ कहा है, केवल परीक्षार्थ कहा था, क्योंकि आपके पुत्र ने मुझ से कहा था कि मैं निर्मोही राजा का पुत्र हूँ। जिसको सुन कर मुझे विश्वास न हुआ था, इस बात के निश्चय करने के लिए इतना कहना पड़ा। क्षमा करना।" राजा ने ऋषि को सच्चा जान कर कुछ न कहा ऋषि प्रसन्नता से अपनी कुटिया को चला गया और राजपुत्र को सब समाचार सुनाया। राजपुत्र प्रसन्न हुआ, और प्रणाम करके चल दिया—

शिक्षा—इसका यह फल निकलता है कि हम भी राजा की तरह ईश्वर की आज्ञा का पालन करना अपना कर्त्तव्य समझें, और किसी को अपना पराया न विचारें, सर्वदा धर्मानुसार कार्य करते रहें।

२०—नगद धर्म

एक सेठ ने अपना धन जमीन में गाड़ रक्खा था, किसी को पता तक न था। एक बार इसके लड़के को रुपये का पता लग गया। उसने पृथिवी को खोद कर रुपया निकाल लिया और रुपयों के बराबर ही तौल कर पत्थर रुपयों की जगह गाड़ दिए। कुछ दिन पश्चात् जब उस सेठ ने पृथिवी को खोदा पर

धन न पाया तब धाड़ मार मार कर रोने लगा और कहने लगा- "मेरा धन कहाँ गया है, उसके विना तो मैं प्राण छोड़ूँगा।" लड़के ने कहा—"पिताजी ! रोते क्यों हो, आप को उसे किसी काम में तो लगाना ही न था, वह रखने मात्र को था। देख लो उतने ही तौल के पत्थर वहाँ गड़े हैं।"

बराये निहादन चे संगो चेजर।

जब रखना ही हुआ तो क्या पत्थर और क्या रुपये। धर्म रखने के लिए नहीं है, किन्तु सेवन करने के लिए है।

२१-लिखित मुनि की सचाई

शंख और लिखित नाम के दो भाई थे। वे नदी के तट पर किसी वन में पृथक् पृथक् अपने आश्रम में रहते थे। एक बार लिखित मुनि, अपने बड़े भाई शंख के आश्रम में गया और वहाँ जाकर भाई की आज्ञा बिना फल तोड़ कर खा लिए। जब भाई को यह बात मालूम हुई तो उसने कहा—"कि तुमने मेरी आज्ञा विना फल तोड़ कर खा लिए, तुमने चोरी की, इसलिए तुम राज दण्ड के भागी हो, जाओ, राजा के पास जाओ और दण्ड की प्रार्थना करो।" भाई की बात सुन लिखित मुनि राजा सुदुम्न की सभा में गये और राजा से अपना अपराध सुना दण्ड की याचना की। राजा ने सत्य समझ कर मुनि को क्षमा प्रदान की, परन्तु लिखित मुनि ने न माना और दोनों हाथ कटवा लिए फिर अपने बड़े भाई शंख के स्थान पर आए और उनसे क्षमा माँगी। भाई के क्षमा प्रदान कर देने पर अपने आश्रम में तप करने लगे।

यदि भूल कर अनुचित किसी ने काम करडाला कभी।
तो वह स्वयं नृप के निकट दण्डार्थ जाता था तभी॥

अब भी लिखित मुनि का चरित वह लिखित है इतिहास में।
अनुपम सुजनता सिद्ध है जिसके अमल-आभास में॥

२२--देवजान्स का त्याग

एक बार बादशाह सिकन्दर अपने बहुत से साथियों सहित देवजान्स से जंगल में मिलने को गया, वहाँ जाकर देखा कि देवजान्स टूटी सी झोपड़ी में टूटी खाट पर सूर्य की ओर मुख किये लेटा हुआ है।

सिकन्दर ने सम्मुख खड़े होकर अपना परिचय दिया, और हाथ जोड़ कर कहने लगा-"कि महाराज! आप की जो इच्छा हो सो माँगिए मैं आपकी सेवा में सब कुछ उपस्थित कर सकता हूँ।" तब देवजान्स ने कहा कि—"राजन्! मुझे किसी वस्तु की इच्छा नहीं है।" बादशाह ने बार बार माँगने की हठ की। देवजान्स ने कहा-"यदि राजन्! तुम्हारी इच्छा देने की ही है तो मेरी धूप छोड़ कर एक ओर हो जाइये इसके सिवा मैं और कुछ नहीं चाहता।" यह सुन कर बादशाह और उसके साथी बड़े विस्मित हो धन्य धन्य कहने लगे। ठीक है।

निरीहाणा मिशि तृणमिव तिरस्कार विषयः।

त्याग के लिये संस्कृत साहित्य में पन्ने के पन्ने भरे पड़े हैं। ऐसे ही महाराज चाणक्य का त्याग प्रसिद्ध है, चन्द्रगुप्त जैसे प्रतापी राजा का महा मन्त्री, बड़ा बुद्धिमान्, शास्त्रों में पारगत था परन्तु एक कवि ने उन के निवास स्थान का वर्णन करते हुए लिखा है।

उपल शकलमेतद् भेदकं गोमयानां।
बटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तोम एषः॥
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभिः।
विनमित पटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम्॥

यह सूखे हुए उपले फाड़ने का पत्थर है और एक ओर यह शिष्यों ने समिधाओं का ढेर लाकर लगा दिया है और इनका छप्पर भी इन शुष्क समिधाओं से ढका हुआ टूटा सा दृष्टिगत होता है।

२३--राम का भाव

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम ने जिस समय लंका पर चढ़ाई की, तब विभीषण उन से मिलने के लिए आया। राम ने जब विभीषण को आते देखा तो खड़े होगये और लंकेश कहकर आदर पूर्वक आसन पर बैठाया। समय पाकर सुग्रीव ने राम से कहा कि-"जिसको आप ने लंकेश कहा है वह लंकेश तो नहीं है यदि कल को रावण आप की सीता को वापस कर आप से सन्धी करले अथवा क्षमा मांगे तो आप दोनों में से एक काय तो अवश्य करेंगे फिर आप का विभीषण को लंकेश कहना कैसे सत्य हो सकता है।"

राम ने सुग्रीव से कहा—'मैं रावण से लंका का राज्य विभीषण को दिला दूंगा और रावण को अयोध्या की राजगद्दी छोड़ दूँगा।" प्रतिज्ञा पालन और वचन दृढ़ता इसी का नाम है।

२४—देश भक्ति

एक जापानी युवक की माता वृद्धा थी इसी कारण वह जंग में नहीं जा सकता था। जब उस वृद्धा को यह मालूम हुआ कि मेरा पुत्र मेरे ही कारण देश हित के लिए जंग में नहीं जा सकता। तो उस वृद्धा ने रात्री को अपने प्यारे देश के हित के विचार से स्वयं ही प्राण खो दिए। जब लड़के को मालूम हुआ कि मेरी माता देश के हित के लिए मर गई तब लड़का भी सहर्ष देशरक्षा के लिए जंग में चला गया।

अभागे भारत ! तुझ में कब ऐसे सपूत जन्म लेंगे ?

२५—विपत में मित्र भी त्याग देते हैं

भारत के एक सुप्रसिद्ध अलंकार वेत्ता महा कवि का कथन है कि-मैंने एक सघन वन में एक सुन्दर वृक्ष को देखा। कहते हैं कि वृक्ष के मूल (जड़) में अनेक प्राणी विराजमान थे इस की अत्युत्तम पल्लवशालिनी शाखाओं पर कोकिलायें मधुर स्वर से सुन्दर गति अलाप रही हैं। किसी २ शाखा पर शुक और सारिका विराजित हैं। और वृक्ष के मृदुल सुन्दर पुष्पों पर भौंरे गूँज रहे हैं इसके नीचे बैठे हुए मयूर भी अपने केकारव के साथ २ नृत्य कर मुग्ध कर रहे हैं।

एक प्रकार का अग्नि जो वन में बाँसों की रगड़ आदि से उत्पन्न होकर किसी २ समय पचास २ कोस तक वन के वृक्ष को जला देता है उसे संस्कृत में दावाग्नि कहते हैं।

अकस्मात् एक बार वन में दावाग्नि लगा और वन के छोटे बड़े वृक्षों को फूंकता हुआ इस पुष्कल परिवारवाले वृक्ष के समीप

आया तब उस भयानक दृश्य को देख कर कविराज महोदय के मुख से यह पद्य निकला जिसको यथा प्राप्त नीचे उद्धृत करते हैं।

रोलम्बैर्न विलम्बितं विघटितं धूमाकुलैः कोकिलैः।
मायूरैश्चलितं पुरैव रभसात्क्रोरैर्धीरैर्गतम् ॥
एकेनापि सुपल्लवेन तरुणा दावानलोपप्लुतः।
मोटः कोन विपत्सु मुञ्चति जनः मूर्ध्नापि यो लालितः ॥

भावार्थ—भौंरे निमेषमात्र भी न ठहरे, धुएँ से व्याकुल हुई २ कोकिलाएँ भी न ठहर सकीं मोरों ने तो पहले ही से अग्नि की भयानक ज्वाला को देख प्रस्थान कर दिया था। नाने भी झट पट उड़ारी मार चलते ही तो बने, सुन्दर २ पल्लवों से पल्लवित उस वृक्ष ने इकेले ही वन की अग्नि का दुमता सहा। इसको चरितार्थ करते हुए कविराज कहते हैं कि विपत्काल में कौन नहीं त्याग देता, अधिक क्या कहें जिसको बड़े लाड़ प्यार से पाला पोसा है वह भी तो विपत्ति में त्याग देता है।

२६—पारस पत्थर

हिमालय पर्वत की गुफा में एक सन्यासी महात्मा योग सिद्धि के लिए योग के साधनों का अनुष्ठान किया करते थे। योग सिद्धि के साधनों को समाप्त करके जब वह भ्रमणार्थ प्रयाग की ओर चल दिए तब मार्ग में चलते चलते उन्हें एक पारस पत्थर हाथ लगा। पहाड़ी लोगों से पूछने पर महात्मा जी को यह ज्ञान हो गया कि यह वही पारस पत्थर है जिस के संयोग से लोहा सोना हो जाता है। महात्मा ने यह सोच कर कि किसी दरिद्री भक्त को दे देंगे यह पत्थर अपनी झोली में

रख लिया। हिमालय पहाड़ से उतर कर वह नीचे एक नगर में आये। उस दिन यह महात्मा अधिक भूखे थे पर इनका यह प्रण था कि आवश्यकता को स्वयं निज मुख से नहीं कहते थे। उस दिन यह सारे नगर में घूमे परन्तु किसी ने भी इन की आकृति को देख कर भोजनार्थ न पूछा। यद्यपि उस नगर में गले में स्वर्ण के हार, माला, कन्ठे, कमर में तगड़ी और हाथों में कंकण पहने बहुत से मोटे ताजे धनिकों को देखा परन्तु इन योगीराज अतिथी का सत्कार एक भी धनी ने न किया। अन्ततोगत्वा महात्मा अपने प्रण को पूरा कर इस विशाल नगर के द्वार से निकल कर बाहर जंगल की ओर चल दिए। चलते चलते द्वार से मिली हुई एक भड़भूजे की दूकान दिखाई दी। भड़भूजे ने इन महात्मा की आकृत को देख कर नमस्ते कह हृदय से स्वागत किया और कुशल प्रश्न के पश्चात् भोजन के लिए आग्रहपूर्वक निवेदन करते हुए कहा—"कि महाराज! आज मेरे ग्रह को ही अपने चरण रज से पवित्र कीजिये।"

महात्मा ने भी हरिभक्त जान कर इसके यहाँ भोजन करना स्वीकार कर लिया। भोजन के अनन्तर महात्मा जी ने सोचा अहो! इस विशाल नगर में सहस्रों धनिक रहते हैं परन्तु धार्मिक यही एक पुरुष है। यदि यह विशेष ऐश्वर्य सम्पन्न होजाय तो इस से भी विशेष ईश्वर भक्त, धर्मोपदेशक अतिथियों की सेवा किया करेगा।

महात्मा जी ने फिर भी सोचा कि यह ऐसी दरिद्रावस्था में भी इतना धर्म परायण है सो निस्सन्देह यह पुरुष ऐश्वर्य-सम्पन्न हो कर धर्म कर्म में इस से भी विशेष तत्पर रहेगा। इस लिए यह पारस पत्थर जो हमारे पास है कुछ दिनों के लिए इसे ही

दे दें, घूम कर जब मैं वापस आऊँगा तब इस से लेकर वहीं रख दूँगा।

महात्मा भड़भूजे से कहने लगे कि—"जब तक मैं देशाटन से न लौटूँ तब तक तुम जितना चाहो उतना, सोना इस पत्थर से लोहा छुआ कर बनालो। किसी को देना मत। मैं आते ही तुरन्त तुम से यह पत्थर ले लूगा।" इतना कह कर वह पत्थर हरि भक्त भड़भूजे के हवाले कर आप देशाटन को चल दिए और कह गये कि मैं अठारह मास में वापस आऊँगा।

महात्मा जी को विदा कर यह भड़भूजा भी बजार में एक लोहा बेचने वाले की दूकान पर गया और पूछा,—"कहो भाई लोहे का क्या भाव है?" उत्तर मिला—"दस सेर।" भड़भूजा बोला—"परसों तो बारा सेर भाव था, आज दस सेर रह गया।" भड़भूजे ने सोचा कि जब सस्ता होगा तब ही खरीद लूँगा ऐसे ही दो मास बिता दिए। फिर लोहे की दूकान पर गया और बोला—"लाला लोहे का क्या भाव है?" उत्तर मिला—"आठ सेर।" यह भड़भूजा आठ सेर की रचा देख घर को वापस चला आया और बोला—"जब सस्ता होगा तब ही लेंगे।" ऐसे ही चार पाँच मास बीत गये। एक दिन फिर दूकान पर गया, और लोहे का भाव पूछा। उत्तर मिला छः सेर। तब तो यह भड़भूजा बहुत घबराया, परन्तु फिर भी अपने विचार पर दृढ़ रहा। परिणाम यह हुआ कि ऐसे ही करते करते अठारह मास बीत गये, महात्मा भी आ गये और अपना पारस पत्थर माँगा तब तो भड़भूजे ने रो रो कर बड़ी कठिनता से वह पत्थर महात्मा जी को दिया।

दार्ष्टान्त—यह पारस पत्थर जो मनुष्य देह है, सच्चि-

दानन्द परमात्मा ने इस जीवात्मा रूपी भड़भूजे को यह मनुष्य शरीर रूपी पत्थर दिया और कहा, कि इस मनुष्य शरीर रूपी पारस पत्थर के संयोग से जितना चाहे उतना धर्मसग्रह रूपी स्वर्ण बनाले। परन्तु खबरदार शतायुर्वै पुरुष। शतं जीवेम शरदः। सौ वर्ष के पश्चात् यह देह रूपी पारस लेलूँगा। अज्ञानी मनुष्य, मै आज धर्म करता हूँ, कल करता हूँ। इसी प्रकार अपने जीवन को बिता, अन्त समय पछताते हुये प्राण त्याग करते हैं। इस लिए जितना ही शीघ्र हो इस शरीर से सुयश (धर्म) कमाना चाहिए।

आहार निद्रा भय मैथुनञ्च, सामान्य मेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीना पशुभिस्समानाः॥

नामुत्र हि सहायार्थं पिता-माता न तिष्ठतः।
न पुत्र दारा न ज्ञातिर्धर्मो गच्छति केवलः॥

२७—धर्म का आदि स्रोत वेद है

एक किसान अपने खेत में नहर की छोटी नाली से पानी दे रहा था। किसान से किसी मरुस्थल निवासी ने पूछा कि—"हे भूमिपते! आज कल वर्षा ऋतु तो है नहीं, फिर तेरे खेत में यह जल कहाँ से आता है?" किसान ने उत्तर दिया—"भाई मेरे खेत में जो पानी भर रहा है वह नहर के छोटे बम्बे से आता है।" मरुस्थल निवासी ने फिर पूछा कि—"भाई उस छोटे बम्बे में जल कहाँ से आया?" किसान ने उत्तर दिया—"उसमें बड़े बम्बे से आया है।"

उसने फिर पूछा—"बड़े बम्बे में कहाँ से आया।" तो उत्तर

दिया कि—"उस मे नहर मे आता है जो कि मायापुर कनखल से निकल कर कानपुर तक लम्बी ले आई गई है।"

मरुस्थल निवासी ने फिर पूछा कि—"भ्राता जी बड़ी नहर में जल कहाँ से आया ?" किसान ने उत्तर दिया —"गंगा में से।" तो फिर गंगा में कहाँ से आया ? उत्तर मिला कि उस में जल हिमालय पर्वत से आया है।" यह सुन कर अनुमान ज्ञान-प्रिय उस मरुस्थल निवासी पुरुष ने कहा—"भ्राता तुमने पहले ही क्यों न कह दिया कि मेरे खेत में जो जल आरहा है वह हिमालय पर्वत से आरहा है।"

दार्ष्टान्त—समस्त मत मतान्तर रूपी नहरें, नदियाँ, और नालियाँ हैं इन में जो कुछ भी धर्मरूपी जल है वह सब वेद रूपी हिमालय से उत्पन्न हुआ।

यदि, तौरेत, ज़बूर, ज़िन्दावस्था, कुरान शरीफ, इञ्जील, आदि में जो धार्मिक शिक्षा हो तो भी वह वेद ही की समझनी चाहिये। सम्पूर्ण मत मतान्तर रूपी दीपकों में जो धर्म रूपी प्रकाश है वह वेद रूपी सूर्य का है।

पवमानस्य विश्ववित्प्रते सर्गा असृक्षत। सूर्यस्येव न रश्मयः॥
सामवेद-उत्तरार्चि

जिस प्रकार सूर्य की रश्मियाँ उदय हो कर मनुष्य आदि प्राणियों की आँखों में प्रकाश उत्पन्न करती हैं उसी भाँति परमात्मा से वेद प्रकट हो कर सब मनुष्यों को सन्मार्ग में प्रवृत्त करते हैं।

न च वेदादृते किञ्चिच्छास्त्र ब्रह्म विधायकम्

मानने वाला महापुरुष है, बस फिर क्या था, जिस प्रकार चन्द्रमा को देखकर समुद्र उछलता है उसी प्रकार कुमारिलभट्ट के मुखरूपी चन्द्र को देखकर समुद्ररूपी राजपुत्री का हृदय उछला और तुरन्त नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली । राजपुत्री रोते हुए कहने लगी—

किं करोमि क्व गच्छामि को वेदानुद्धरिष्यति ।

क्या करूँ, कहाँ जाऊँ कौन ऐसे समय में वेदों की डूबती हुई नौका को पार लगावेगा ।

इन शब्दों को सुनकर महाराज कुमारिलभट्ट का गला भर आया और कहा—

मा विभेषि वरारोहे भट्टाचार्योऽस्मि भूतले ।

हे राजपुत्री ! तू तनिक भी मत घबरा, मुझ कुमारिल सा वैदिक धर्मी अभी पृथ्वी पर है ।

भट्टाचार्य जी ने अपने कथनानुसार वैदिक धर्म का प्रचार कर शंकर स्वामी के लिए भी मार्ग साफ कर दिया था ।

२६--अनुचित प्रेम का परिणाम

यह तो आप पर विदित ही है, कि सूर्य को देख कर कमल खिलता है। प्रातःकाल हुआ, मन्द मन्द शीतल सुगन्ध पवन जगत को शान्ति देने लगा, पुष्प आह्लादित हो शाखाओं में पुष्पित होने लगे। भगवान् सूर्य अपनी सहस्रश स्वर्णमयी किरणों को लेकर पूर्व दिशा से उदय हुआ। भ्रमर भी घूँ घूँ

करता हुआ सुगन्ध अनुभव करने के लिए कमल पुष्प पर जा बैठा, गन्ध अनुभव करते करते सायकाल होगया, सूर्य अस्त हुआ, और भ्रमर देव कमल पुष्प में बन्द होगए। यदि वह चाहता तो कोमल कमल को भेदन कर बाहर निकल जाता, पर इन्द्रियारामी भ्रमर प्रेम वश में ऐसे फँसे कि बाहर न निकल सके, क्योंकि—

बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि प्रेम रज्जु कृत बन्धन मन्यत्।
दारुभेद निपुणोऽपि षडंघ्रि पकजे भवति कोश निरुद्धः॥

यों तो संसार में बन्धन अनेक हैं, परन्तु प्रेम बन्धन सबसे ही निराला है। बड़े बड़े शाल के लट्ठों को भेदन करने की सामर्थ्य रखता हुआ भ्रमर कोमल कमल में बँध जाता है।

इधर रात्री हुई, उधर भ्रमर राज कमल पुष्प में बन्द हुए २ सोचने लगे, रात बीत जायगी, प्रात काल होगा, सूर्य उदय होगा और यह कमल खिल जायगा, कमल कोश में पड़े हुए यह सोच ही रहा था कि वन्य हस्ती ने कमल को उखाड़ कर अपने मुख में रख लिया—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं, भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पकजालम्। इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे, हा हन्त हन्त नलिनी गज उज्जहार॥

इसी प्रकार बड़े बड़े तपस्वी इन्द्रियों के वश हो अनुचित प्रेम का परिणाम भोगते हैं, और इन विष समान विषयों में फँसकर अपने अमूल्य मनुष्य जीवन को नष्ट कर देते हैं।

३०—विषयों की असलियत

एक राजा के गृह में एक ही पुत्र था, जिसे राजा प्राणों से भी अधिक प्यारा समझता था। जब वह बड़ा होगया तब एक बार उस राज पुत्र ने अपने मन्त्री की कन्या को देखा और उस कन्या पर आशक्त होगया। व्याधि का बहाना कर महल में जा पड़ा माता-पिता पूछने लगे—"बेटा, कहो तो सही क्या हुआ, जो दुःख तुम्हें हो उसका प्रतिकार करें।" विशेष पूछने पर राज-पुत्र ने कहा कि मेरा विवाह या तो मन्त्री सुता के साथ कर दीजिए अन्यथा मेरा मरण स्वीकार कीजिए। राजा ने कहा—"यह कौनसी बड़ी बात है, जो कुछ तुम कहोगे वह ही कर दिया जायगा।"

राजा ने अपने मन्त्री को बुलाकर अपने पुत्र की बात कह सुनाई। मन्त्री ने उत्तर दिया—"अच्छा महाराज, आपकी आज्ञा शिरोधार्य है परन्तु इस विषय में मैं अपनी कन्या से और पूछलूं क्योंकि उसकी इच्छा के विरुद्ध भी कार्य करना ठीक न होगा।" मन्त्री अपने स्थान पर गया और अपनी कन्या से सारा वृत्तान्त कह सुनाया। कन्या ने कहा—"पिता जी! आप राजा से जाकर कह दें कि मेरी पुत्री आप के पुत्र से विवाह होने से प्रथम एकान्त स्थान में मिलना चाहती है।"

राजा ने मन्त्री द्वारा यह समाचार सुना और अपने पुत्र से कहा कि—"तुमसे पहले,मन्त्री सुता मिलना चाहती है, इसलिए तुम किसी नियत स्थान पर मिलो।" पिता की बात सुनकर राजपुत्र मन्त्री सुता से नियत स्थान में मिलने गया जहाँ पर वह उपस्थित थी। मन्त्री सुता ने उस दिन जुलाब

से रक्खा था और अपना सारा शरीर मल-मूत्र से लथेड़ रक्खा था। सारे कमरे में दुर्गन्ध ही दुर्गन्ध फैली हुई थी। राज पुत्र ने जब कमरे में आगे बढ़कर देखा तो मन्त्री सुता को मल-मूत्र में भरा पाया दुर्गन्ध अनुभवकर उलटे पाँव लौट आया मन्त्रीसुता ने कहा कि—"राजपुत्र पीछे क्यों लौट रहे हैं, आगे आइये जिस वस्तु को आप देखकर पीछे हटे हैं क्या वह वस्तु मुझ से पृथक है? यह सारा शरीर ही तो मल-मूत्र का पुतला है।" राजपुत्र उसी समय विषयों को घृणित जान कर और दुख मूलक समझ कर सबदा के लिए अरुचि करगया।

जिस काल में चित्त की वृत्तियाँ विषयों की ओर दौड़ती हैं उस काल में ऐसा समझना चाहिए—

भृङ्ग सारङ्ग मातङ्ग पतङ्ग शफरी गणान् नेक्षसे ।
चित्तवृत्ते किं विनष्टान विषयाशया ॥

२१—ब्रह्मचर्य

(ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः)

एक बार महामुनि व्यास देव जी ने अपने एक-मात्र प्रिय पुत्र शुकदेव को अपने आश्रम पर बुला कर कहा—"हे पुत्र! हमारे पितामह का नाम तो हमारे पिता से और हमारे पिता का हम से और हमारा नाम तुम से जगत में स्थिर है; तुम्हारे पश्चात् वंश विच्छेद हो जायगा इस लिए तुम विवाह करके गृहस्थ सुख का अनुभव कर अपना नाम जगत में स्थिर करो।"

महात्मा शुकदेव ने कहा कि—"पिता जी ! मुझे तो गृहस्थ सुख अनुभव नहीं करना है, वंश विच्छेद हो तो होवे, परन्तु शुकदेव उस यथार्थ सुख से वञ्चित नहीं होना चाहता जिसे यथार्थ सुख को वह अनुभव कर चुका है और जो वर्णनातीत है।" इतना कह कर शुकदेव वन को चलते बने, उनको लौटाने के लिए महामुनि व्यास भी पीछे २ हो लिए। जिस मार्ग से शुकदेव गये थे उसी मार्ग में नर्वदा नदी पड़ती थी, नदी पर एक राजा की स्त्री-कन्या, भगनियाँ स्नानार्थ आई थीं।

शुकदेव उनके बीच में से नर्वदा के पार होगये परन्तु स्त्रियों ने शुकदेव को देख कर परदा न किया। थोड़ी देर पश्चात् जब व्यास जी नदी के तट पर पहुँचे तब उनको देख कर महिला गण ने परदा कर लिया। अब व्यास जी शुकदेव का विचार तो भूलगये और योषित समुदाय के प्रति कहने लगे—"हे पुत्री बहनों, माताओ ! इसका क्या कारण है कि तुम सब ने मुझ को तो देख कर परदा किया और शुकदेव को देखकर परदा न किया?"

यह सुन कर एक स्त्री ने कहा—"महाराज, हम यह जानती हैं कि आप महर्षि व्यास हैं और वेदान्त शास्त्र के परम आचार्य हैं। महाराज ! आपने शुकदेव को उत्पन्न किया, आप यह जानते हैं कि स्त्रियाँ किस कार्य में लाई जाती हैं, परन्तु शुकदेव इस विषय में निरा बच्चा है। इस लिए हमने आपसे परदा किया, और उन से न किया।

अहा ! क्या ही हमारे पूर्वजों का उच्चकोटि का ब्रह्मचर्य था, क्या ही अनुपम आत्मिक बल होता था, यह शुकदेव के जीवन से स्पष्ट प्रतीत हो गया होगा।

धर्म्यं यशस्य मायुष्यं लोकद्वय रसायनम् ।
अनुमोदामहे ब्रह्मचर्य मेकान्तं निर्मलम् ॥

आयुस्तेजोबलं वीर्य प्रज्ञा श्रीश्च महायशः, पुण्यं च मतिप्रियत्व च वर्द्धते ब्रह्मचर्यया ।

३२--तुलसी वैराग्य

एक बार महात्मा तुलसीदास जी को अर्द्धरात्री के समय स्त्री प्रसग की इच्छा हुई। मन्मथ की मार से विह्वल हुए २ तुलसीदास विषय सुख भोगार्थ अपनी स्त्री के निकट जाने के लिए स्वसुरगृह को चल दिए मार्ग में गगा नदी पड़ती थी, गगा पार कर जब मकान के पास पहुँचे तो क्या देखते हैं कि सारा नगर सो रहा है। जिस गृह में इन्हें आना था उस का भी द्वार बद पाया। इधर उधर देखते ही थे कि किस उपाय से गृह के भीतर जाँय। दीवार पर लटकती हुई एक रस्सी दृष्टिगत हुई, यह उसे ही पकड़ कर मकान के ऊपर, चढ़ गये और छत फाड़ अपनी स्त्री को जा जगाया और कहा कि– "प्यारी तेरे कारण ही इस सम यआया हूँ।"

स्त्री अपने पूज्य पतिदेव को देख कर शय्या से उठ बैठी और कहा महाराज ! देखिए तो सही, रात्री कैसी डरावनी हो रही है, बादलों की गड़गड़ाहट और बिजली की कड़कड़ाहट से मनुष्य का हृदय भयभीत होता है। अस्तु, महाराज आप ने मुझे अपने दर्शनों से विशेष अनुगृहीत किया अपने शरीर की

किंचित मात्र परवाह न करते हुए आपने दर्शन दिए मैं विशेष अनुगृहीत हूँ। परन्तु स्वामिन्! आपका जितना प्रेम मुझ से है यदि यही प्रेम-भक्ति यथार्थसुख प्राप्ति के लिए परब्रह्म परमात्मा से होती तो निःसन्देह आप का विशेष उपकार होता।"

कहते हैं कि महात्मा तुलसीदास जी उसी समय अपनी स्त्री को गुरु कह कर वन को चले गये।

जितना प्रेम हराम से, उतना हरि से होय।
चला जाय बैकुण्ठ को, बाँह न पकड़े कोय॥

३३-राजा मुञ्ज और भोज

जिस समय राजा भोज का पिता मरणासन्न था, उस समय उसने अपने कनिष्ट भ्राता मुञ्ज को बुला कर कहा—"भाई! जब भोज पढ़ लिख कर चतुर हो जाय तब इस का अभिषेक कर देना मैं तुम्हें भोज को सौंपता हूं।" इतना कह कर राजा भोज के पिता ने पञ्चत्व प्राप्त किया।

इनके मरने के पश्चात् मुञ्ज गद्दी पर बैठा, भोज को एक प्रसिद्ध विद्यालय में पढ़ने के लिए भेजा और स्वयं राज्य व्यवस्था देखने भालने लगा। एक दिन मुञ्ज अपने मन्त्री सहित विद्यालय में गया, परीक्षा लेने पर भोज का अन्य सब विद्यार्थियों में सर्वोपरि पाया। राज्य लोभ कुछ ऐसी वैसी वस्तु नहीं होती, इसी राज्य लोभ के कारण सहस्रों राजाओं के प्राण गए कितने ही राजाओं ने, अपने भाइयों को कत्ल कराया, माता पिता को कैद किया, उन्हें भूखों मारा, हमारी लेखनी में वह शक्ति नहीं जो इस पाप पुञ्ज का वर्णन लिख सके। अस्तु।

मुंज ने राज भवन में आते ही भोज को क़त्ल किए जाने की आज्ञा दी। सारे नगर में हाहाकार मच गया, प्रजा तथा मन्त्रियों ने मुंज की कितनी ही मिन्नतें की और कहा-"महाराज, भोज अभी बच्चा है वह आप का क्या कर सकता है।" अन्त तो गत्वा भोज को वध करने के लिए वधिकों के हाथ सौंपा गया भोज ने वध्य स्थान में जाकर निम्न लिखित श्लोक अपने चचा के पास लिख कर भेजा।

मानधाता क महिपतिः कृतयुगेऽलंकार भूतोगतः।
सेतुर्येन महोदधो विरचितः क सौदशास्यान्तकः॥
अन्येचापि युधिष्ठिरः प्रभृतयो हस्तंगताः भूतले।
नैकेनापि समंगता वसुमती मन्ये त्वया यास्यति॥

सतयुग में मान्धाता नामी बड़ा प्रतापी राजा जो पृथिवी का भूषण समझा जाता था, वह कहाँ है? जिस राम ने समुद्र का पुल बाँधा और रावण का वध किया वह अब कहाँ हैं? हे राजन् और भी बड़े बड़े शूरवीर युधिष्ठिर भीष्म, भीम, हरिश्चन्द्र आदि राजा हुए यह मेदिनी किसी के साथ न गई, परन्तु चाचा जी ज्ञात होता है आप के साथ यह अवश्य जायगी। मुंज ने जब यह पत्र पढ़ा तब कुछ ज्ञान हुआ, और भोज को गद्दी दे आप वैराग्य धारण कर वन को चला गया।

राजा भोज अपने समय का अद्वितीय शासक हो चुका है। बड़ा विद्वान्, साहसी, धीर, वीर, गम्भीर हुआ और विद्याप्रेमी तो इतना था कि इसने अपने राज्य में ढिंढोरा करा दिया था।

विप्रोऽपियो भवेन्मूर्खः स तिष्ठतु पुराद्वहिः।
कुम्भ कारोपि यो विद्वान स तिष्ठतु पुरे मम॥

कुम्हार भी यदि विद्वान् हो तो मेरे राज्य में रहे और ब्राह्मण मूर्ख हो तो नगर से बाहर चला जाय।

इसके शासन काल में प्रजा में इतना विद्याप्रेम बढ़ा कि लकड़हारे जुलाहे तक कवि हो चुके हैं।

३४--अज को वशिष्ठ-उपदेश

न मलिन चेतस्युपदेश बीजप्ररोहोऽव्रजत्

एक समय नारद मुनि हाथ में वीणा लेकर विमान पर चढ़े हुए गाते बजाते दक्षिण सागर के तटपर स्थित गोकर्ण वासी शंकर को गाना बजाना सुनाते आकाश मार्ग में जारहे थे।

नारदमुनि की वीणा में कदम्ब के पुष्पों का हार लटक रहा था, वायु के झकोलों से हिलकर वह हार अज के साथ विहार करती हुई रानी इन्दुमती के वक्ष स्थल पर गिरा उसके आघात से अज की प्राण प्रिया, इन्दुमती के प्राण पखेरु प्रयाण कर गए। राजा अज इन्दुमती के शव को गोद में लेकर अनेक प्रकार से विलाप करने लगा। उस समय के दश ब्रह्मनिष्ट वशिष्ठ गुरु उपदेश देने आए और कहने लगे।

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे नारी गृह द्वार जनाश्मशाने।
देहश्चितायां परलोक मार्गे धर्मानुगो गच्छति जीव एकः॥

हे राजन! सम्पूर्ण धन-दौलत पृथिवी पर पड़ा रह जाता है। हाथी घोड़े बैल गाय आदि पंशु सब यहीं अपने थानों की शोभा बढ़ाते रहते हैं। समस्त बन्धु बान्धव श्मशान् भूमि तक ही जाकर रह जाते हैं और क्या कहूँ प्राणप्यारी स्त्री जो हमारे दुख में दुखी

और सुख में सुखी होती है वह भी भवन के द्वार तक ही साथ देती है। यह शरीर जिसपर हमें बड़ा घमंड रहता है स्वल्प काल में ही भस्मसात हो जाता है। यह जीव केवल शुभाशुभ को ही अपने साथ लोक में लेजाता है।

समझ तो सही तेरे पितामह आदि बड़े२ प्रसिद्ध राजा इस संसार मे खाली हाथ चले गए परन्तु यह स्त्री पुत्र धनादि किसी के साथ न गए और न तेरे साथ जासकते है, इस लिए उस के मरने की चिन्ता मत करो, देहधारियों के साथ विपत्ति लगी ही रहती है। रोने से क्या तुम्हारे मरने से भी वह नहीं लौट सकती। जब अपना शरीर और आत्मा वियुक्त होने वाले हैं तो पुत्र कलत्र आदि के अलग होने का दुख कैसा? तुम जैसे विद्वानों को शोक न करना चाहिए।

अज को विशेष समझाया परन्तु अज न समझा और रो २ कर कहने लगा—

नव पल्लव संस्तरेऽपि ते मृदु दूयेत यदङ्ग मर्पितम्।
तदिदं विषहिष्यसे कथवद् वामोरु चितादिरोहणम्॥

हे प्यारी नवीन पत्तों के बिछौने पर भी लेटे हुए यह तेरा सुकुमार शरीर दुखता था, तो बता यह तेरा शरीर चिता पर की कठिनता को कैसे सहेगा।

इस प्रकार अज का मन मलिन ही रहा। कमल पत्र मिवाम्भसा, वशिष्ठ का उपदेश उस पर किञ्चिन्मात्र भी प्रभाव न जमा सका।

ठीक है जिन चित्तके सांसारिक विषय समान विषयो में

लगे हुए हैं उन मलिन चेता पुरुषों की यही दशा होती है।

२५--पुत्र को पिता की पहचान

एक व्यापारी ने अपनी स्त्री के साथ रात्री को मैथुन किया। भोग करने से वीर्य ठहर गया और वह व्यापारी प्रात काल ही उठ कर किसी बन्दरगाह को व्यापारार्थ चला गया। २५-३० वर्ष के पश्चात् बहुत सा धन संचय कर अपने स्थान को वापस आया। इधर लड़का भी जन्म लेकर २५-३० वर्ष का हो चुका था।

अब एक ही स्थान पर व्यापारी वह लड़का दोनों बैठे हैं न तो पिता को यह समाचार मालूम है कि यह मेरा पुत्र है और न उस लड़के को ही ज्ञात है कि यह मेरा पिता है। उस पतिव्रता स्त्री ने दोनों को परस्पर परिचय कराया, अर्थात् अपने पति को समझाया कि हे स्वामिन् यह आपका वह पुत्र है जिसको आप गर्भ में छोड़ गए थे और अपने पुत्र को समझाया कि हे पुत्र यही तेरा पिता है। फिर पिता को पुत्र का और पुत्र को पिता का ज्ञान हो गया।

पिता पुत्र रदुभयोदृष्टत्वात्।

इसी भाँति विवेक भी प्रकृति और पुरुष का ज्ञान कराने वाला है।

३६–ईश्वर-प्रेम

एक राजा सम्पूर्ण राज्यकार्य मन्त्री पर निर्भर छोड़ स्वयं भोग विलास में लगा रहता था। राजभक्त मन्त्री कार्यवश इसके शयनागार के द्वार पर घंटों खड़ा रहता पर यह माण्डलिक नरेश कुछ भी ध्यान न देता था।

एक दिन मन्त्री कुछ कागज़ात लेकर हस्ताक्षर कराने के लिए राजा के महल में गया, द्वार पर खड़े होकर राजा के किसी चर सेवक से कहा कि—"भीतर जाकर कहो कि आपका मन्त्री एक आवश्यक कार्यवश आया हुआ द्वार पर खड़ा है।" राजा उस समय रानियों के साथ चौसर खेलने में लगा था सेवक ने मन्त्री का सन्देश राजा से कह सुनाया। राजा ने उत्तर दिया कि—"मन्त्री से कह दो, अभी दो घंटे तक ठहरे, दो घंटे पश्चात् स्वयं ही बुला लूँगा।" मन्त्री दो घंटे की जगह तीन घंटे तक खड़ा रहा, फिर भी राजा ने स्मरण न किया, इसी प्रकार मन्त्री कई घंटे तक बैठा रहा, बैठे २ मन्त्री के हृदय में विचार उत्पन्न हुआ कि अहा! जितनी सेवा मैं इस राजा की करता हूँ यदि इतनी ही सेवा मैं जगत पिता परमात्मा की करता तो निःसन्देह ईश्वर मुझ पर सन्तुष्ट होते।

मन्त्री राज द्वार को उसी समय छोड़ अपने स्थान को चला आया और स्त्री पुत्रों से कहा कि—"चार घंटे के भीतर जितना द्रव्य तुम लेजाना चाहते हो यहाँ से अन्य स्थान में ले जाओ, नहीं मालूम मेरे चले जाने पर राजा इस घर की क्या दशा करे।"

चार घंटे के बाद मन्त्री ने अपने कई मंज़िले मकान पर

चढ़कर नक्कारा बजा दिया कि आओ जिसका जी चाहे वह आकर मन्त्री सदन को लूट लो, बस फिर क्या था देखते ही देखते लोगों ने सारा धन-धान्य अपने अधिकार में कर लिया मन्त्री लँगोट बाँध हाथ में तूँबा ले नगर से निकल कर अन्य राजा की सीमा में जाकर पर्ण कुटी बना ईश का अवलम्ब ले जगदीश की भक्ति में तत्पर हो गया।

दो तीन दिवस पश्चात् जब राज्य कार्य में गड़बड़ी मचने लगी तब उस विषयी राजा को मन्त्री की आवश्यकता प्रतीत हुई राजा ने अपने हितषी मन्त्री को बुलाने के लिए उच्च कर्मचारी भेजे पर वह तीव्र वैराग्य सम्पन्न वह मन्त्री न आया, अन्त में मन्त्री को लिवालाने के लिए राजा स्वयं तयार हुआ।

राजा के जाने की तयारी देख रानियाँ पूछने लगीं राजन् आप कहाँ जाते है? राजा ने उत्तर दिया कि हमारा प्रधान मन्त्री सन्यासी हो गया है, उसे किसी प्रकार समझा कर यहाँ राजधानी में लावेंगे। राजा की बाते सुनकर रानियो ने कहा- "महाराज ऐसे धर्मात्मा पुरुष के दर्शन तो हम भी करना चाहतीं है आप अपने साथ हमे भी ले चलिए।" राजा रानियो और सेना को साथ लेकर चल दिया, चलते २ उसी स्थान पर पहुँचा। जहाँ मन्त्री रहता था। मन्त्री ने राजा को आते देख राजा का यथोचित स्वागत किया। राजा ने अपने राज्य भक्त मन्त्री की दशा देख कर पूछा कि-"हे मन्त्रिन तू एक मायडलिक राजा का मन्त्री था और तेरे सुख के सामान कितने भारी थे, तू जो उस राजा के आश्रम को छोड़ कर यहाँ जंगल में ईश्वर की शरण में पड़ा है, बता तुझे फल मिला भी?"

मन्त्री ने उत्तर दिया—"हाँ राजन्! ईश्वर की शरण में आने से इतना तो अल्प समय में अर्थात् दो चार दिन में ही मिल गया कि मैं आपके द्वार पर खड़ा हुआ घंटों आपकी प्रतीक्षा में पाँव पीटा करता था किन्तु मेरी एक भी सुनवाई न होती थी। आज श्रीमान् सपरिवार स्वयं मेरे स्थान पर मुझे आदरणीय समझ कर इस उजाड़ जंगल में समुपस्थित हुए हैं। दो तीन दिन की कमाई तो इतनी है आगे जो कुछ मिले फिर पूछ लीजियेगा।"

३७-साहित्य-मन्दिर

रूस में एक कथा प्रसिद्ध है कि एक बार ईसा और पीटर साथ २ चले जा रहे थे। एक गाँव में कुछ ग्रामीण मिल कर गीत गा रहे थे। ईसा वहाँ खड़ा हो गया और बड़ी उत्सुकता से उस गान को सुनने लगा। दूसरी जगह ईश्वरीय भक्ति से भरे गीत गाये जा रहे थे, ईसा वहाँ से चुप चाप आगे बढ़ गया। पीटर ने हैरान होकर क्राइस्ट से पूछा कि—"इस का क्या कारण है कि आप ने ग्रामीण गीतों को ईश्वरीय भजनों से विशेष पसन्द किया?" क्राइस्ट ने उत्तर दिया—"मेरे मित्र, जहाँ ईश्वर भक्ति के भजन गाये जाते थे वहाँ कोई सुगन्ध न थी। वस्तुतः इसी लिए साहित्य मन्दिर में किन्हीं २ धार्मिक मन्दिरों की अपेक्षा अधिक सुगन्ध है।"

३८-एक जापानी साधु

जापान के एक छोटे गाँव की झोपड़ी में एक नाटे क़द का

जापानी रहता था। उसका नाम ओशियो था। ओशियो बड़ा धीर, वीर, अनुभवी और ज्ञानी साधु था। वह दीन दुनियाँ से कोई सरोकार न रखता था किन्तु अपने विचार रूपी समुद्र में डुबकी लगाता रहता था। ग्राम पास के गाँव के लड़कों को वह निःशुल्क शिक्षा देता था। जो कुछ मिल जाता वह उसी में मस्त रहता था।

दुनियाँ की व्यवहारिक दृष्टि से वह एक प्रकार का निखट्टू था क्योंकि इस पुरुष ने संसार का कोई बड़ा काम नहीं किया था उस की सारी आयु शान्तिमय व्यतीत हुई, लोग समझते थे कि वह एक साधारण पुरुष है।

एक बार अकस्मात् दो तीन फ़सलों के न होने से इस साधु के पार्श्ववर्ती देश में बड़ा भयानक दुर्भिक्ष पड़गया। लोग बड़े दुखी हुए। लाचार हो इस निर्धन साधु के पास सहायतार्थ आये वह उनकी सहायता को तयार होगया।

पहले वह ओसाका नामक शहर के बड़े २ धनाढ्य पुरुषों के पास गया और उन से सहायता माँगी। इन भले मानुषों ने वचन तो दे दिया परन्तु उसे पूरा न किया। ओशियो फिर उनके पास कभी न गया।

उस ने राजा के मन्त्रियों को इन दुर्भिक्ष पीड़ित पुरुषों की सहायता के लिए पत्र लिखे परन्तु वहाँ से भी बहुत समय व्यतीत हो जाने पर उत्तर न आया। ओशियो ने अपने वस्त्र और पुस्तकें नीलाम करदीं जो कुछ मिला वह उन आदमियों को बाँट दिया। भला इतने अल्प धन से उनका क्या हो सकता था परन्तु ओशियो का हृदय अब शिवरूप हो चुका था। ओशियो ने कहा कि सब लोग हाथ में बाँस लेकर तयार हो जाओ और बग़ावत का झंडा खड़ा करदो। इस के विरुद्ध किसी ने ज़बान तक न

विलाई बगावत का झंडा खड़ा हो गया ओशियो भी एक बाँस हाथ में लेकर सब के आगे २ चल दिया, और राजा के दुर्ग (किले) पर हल्ला बोल दिया। इस साधु जनरल की सेना को कौन रोक सकता था। जब राजकीय दुर्ग के अध्यक्ष (सरदार) ने देखा तो उसने रिपोर्ट की और आज्ञा माँगी कि ओशियो और उसकी जंगी फ़ौज पर फ़ेर की जाय, आज्ञा हुई कि ओशियो तो प्रकृति के सच्चे पर्क पढ़ने वाला है वह किसी विशेष बात के लिए चढ़ाई करके आया होगा, उसे आने दो, रोको मत।

जब ओशियो, दुर्ग के भीतर प्रविष्ट हुआ तब दुर्गाध्यक्ष ने इस मस्त जनरल को पकड़ कर राजा के सामने उपस्थित किया। उस समय ओशियो ने कहा—"ये राज भंडार जो अनाज से भरे हुए हैं, इन गरीबों की सहायता के लिए क्यों न खोल दिये जाँय।" ओशियो की जबान में दैवीशक्ति थी, जो काम कर गई। राजा ने आज्ञा दी कि गल्ले के कोठे तुरन्त खोल दिये जायँ, और सारा अन्न इन गरीबों को बाँट दिया जाँय।

ओशियो, कृतकार्य हुआ, उसने जिस कार्य के लिए कमर बाँधी थी कर दिखाया। गरीबों की विपत्ति का अन्त हो गया।

ओशियो की हृदय की स्वच्छता, सचाई, और दृढ़ता के सम्मुख कोई पुरुष शक्ति जमी न रह सकी।

जो पुरुष दूसरे असहाय पुरुषों की सहायता करता है, उस पर ईश्वरीय हाथ रहता है और अपने मन्सूबे में पूरा उतरता है।

२९-शंकराचार्य्य और मण्डन मिश्र

शंकर दिग्विजय नामक काव्य महत्व का ग्रंथ है। उसमें श्री शंकर और मण्डनमिश्र का संवाद विशेष मनोरंजक है। हम

पाठकों के मनोरञ्जनार्थ ज्यों का त्यों रखते हैं। इस से विशेष शिक्षायें भी ग्रहण की जा सकती हैं।

मण्डनमिश्र पूर्व-मीमांसा के अनुयायी अर्थात् कर्मकाण्डी थे। उनका पाण्डित्य-सौरभ-दिगन्त व्यापी था। शंकराचार्य ने उन्हें शास्त्रार्थ में परास्त करके अद्वैत वेदान्त (नवीनवेदान्त) का अनुयायी बनाना चाहा। उस समय शंकर प्रयाग में थे। वहाँ से उन्होंने नर्मदा नदी के तट पर बनी हुई माहिष्मती नगरी को प्रस्थान किया। वहाँ पर मण्डनमिश्र रहते थे।

ततः प्रतस्थे भगवान् प्रयागात्तं मण्डन पण्डितमाशुजेतुम्।
गच्छन्स्वस्त्या पुरमालुलोके माहिष्मतीं मण्डन मण्डिता सः॥

माहिष्मती में शंकर नगर के बाहर एक बाग में ठहरे और आन्हिक कृत्यों से निवृत्त होकर मण्डनमिश्र का निवास-स्थान ढूँढ़ने चले। मार्ग में उन्हें मण्डनमिश्र की दो दासियाँ मिलीं, जो जल भरने जारही थीं। उन से शंकर ने मण्डनमिश्र के स्थान का पता पूँछा, दासियों ने उत्तर दिया—

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति,
द्वारस्थ नीडान्तर सन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डन मिश्र धाम।
फल प्रदं कर्म फल प्रदोऽजः कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति,
द्वारस्थ नीडान्तर सन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डन मिश्र धाम।
जगद् ध्रुवं स्याज्जगद ध्रुवं स्यात्कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति,
द्वारस्थ नीडान्तर सन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डन मिश्र धाम।

वेद स्वतः प्रमाण है या परतः प्रमाण—अर्थात् वेद ईश्वरी ज्ञान है अथवा मनुष्य कृत?

सुख दुख रूपी कर्मफल कर्म करनेवाला स्वयं भोगता है अथवा जगत्पिता परमात्मा देता है ?

संसार नित्य है अथवा अनित्य ?

इस प्रकार के प्रश्नोत्तर तोता और मैना जिस द्वार पर पिंजड़े में बन्द हुए करते हों वही मण्डन मिश्र का स्थान जानिए।

दासियों द्वारा स्थान का पता जान कर शंकर मण्डन मिश्र के द्वार पर पहुँचे, द्वार बन्द था।

कुछ देर पश्चात् मण्डन के दर्शन हुए। शंकर और मण्डन में परस्पर जो उत्तर प्रत्युत्तर हुए। वे पढ़ने योग्य हैं। विशेषता यह है कि जो कुछ मण्डन ने कहा या पूछा उसका भाव दूसरा ही अर्थ करके शंकर ने उत्तर दिए। देखिये—

मण्डनमिश्र -"कुतो मुण्डी" मुण्डी अर्थात् सिर मुँड़ाये हुए कहाँ से आये ? इनका यह भी अर्थ होता है कि शरीर के किस भाग से मुण्डन कराया है।

शंकर—"आगलान्मुण्डी" गले तक मुण्डन कराया है।

मण्डन—"पन्थास्ते पृच्छयते मया" मैं तेरा मार्ग पूछता हूँ। यह कर्म वाच्य प्रयोग है यदि कर्म वाच्य में इस का अनुवाद किया जाय तो 'तेरा मार्ग मुझ से पूछा जाता है' यह अर्थ होगा इसी पिछले अर्थ को लक्ष्य करके शंकर ने उत्तर दिया।

शंकर—"किमाह पन्था." मार्ग ने क्या कहा ? इस प्रकार के विपरीत अर्थ सुन कर मण्डन क्रुद्ध हो गये और बोले।

मण्डन—"त्वन्माता मुण्डेत्याह" मार्ग ने कहा कि तेरी माता मुण्डा है।

शंकर—'तथैवहि' बहुत ठीक कहा। पूर्वोक्त उत्तर प्रत्युत्तर का एक श्लोक बन गया।

यथा—कुतो मुण्ड्या गलान्मुण्डी पन्थास्ते पृच्छयते मया।
किमाह पन्थास्त्वन्माता मुण्डेत्याह तथैवहि॥

शंकराचार्य ने "तथैवहि" कह कर दूसरा श्लोक पढ़ा।

पन्थानं त्वमपृच्छस्त्वां पन्था: प्रत्याह मण्डन।
त्वन्मातेत्यत्र शब्दोऽयं न मां ब्रूयाद् मच्छकम्॥

मण्डन तूने ही मार्ग से प्रश्न किया। तुझको मार्ग ने उत्तर दिया कि तेरी माता मुण्डी है, मैंने तो मार्ग से कुछ पूछा ही नहीं, इस लिए मार्ग का उत्तर मेरे लिए नहीं, किन्तु तेरे लिए ही है। अर्थात् मार्ग ने तेरी माता को मुण्डा बनाया। यह सुनकर मण्डन और विशेष क्रुद्ध हुए और कहने लगे—

मण्डन—"अहो पीता किमुसुरा" क्या तुमने शराब पी है! यहाँ पर 'पीता' के अर्थ पी गई और पीले वर्ण वाली, दोनों होते हैं।

शंकर—'नवश्वेता यतः स्मर' नहीं सुरा पीत, नहिं होती श्वेत, होती है उसके रंग को स्मरण कीजिए।

मण्डन—"किं त्वं जानासि तद्वर्णं" क्या तुम उसके रंग को जानते हो?

शंकर—"अहं वर्णं भवान् रसम्" मैं केवल उसके वर्ण को जानता हूँ, पर आप तो उसके स्वाद से भी परिचित हैं।

पूर्वोक्त वाक्यों के मेल से एक श्लोक बन गया।

अहो पीता किमुसुरा नैव श्वेता यतः स्मर।
किं त्वं जानासि तद्वर्णं मई वर्णं भवान् रसम्॥

अब तो मण्डन और भी आग बबूला होगए और यह श्लोकार्द्ध कहा—

मण्डन—"मत्तो जात: कलञ्जाशी विपरीतानि भाषसे" कलञ्ज नामक माँस का खाने वाला तू मत्त (मतवाला) होकर अब यह बातें कर रहा है। "मत्तोजात:" का अर्थ पागल हो गया और मुझ से उत्पन्न हुआ भी होता है।

माँस खाना निषिद्ध है अतएव घृणित आक्षेप को सुन कर शंकर ने उत्तर दिया—

सत्यं ब्रवीषि पितृवत् त्वत्तो जातः कलंजभुक्।

जैसे तुम अपने पिता के कलञ्जाशी होकर विपरीत बातें करते हो, वैसे ही तुझ से उत्पन्न हुआ कलञ्जाशी विपरीत बातें करता है तो ठीक ही करता है। क्योंकि—यथा पिता तथा पुत्र।

मण्डन—कन्थां वहसि दुर्बुद्धे गर्दभे नापि दुर्धराम्।
शिखा यज्ञोपवीताभ्यां कस्ते भारो भविष्यति॥

इतनी भारी गुदड़ी जिसे गधा भी कठिनता से ढो सकेगा, तुम लिए फिरते हो पर शिखा और यज्ञोपवीत क्या इतने भारी हैं जो तुम से नहीं उठते।

शंकर—कन्था वहामि दुर्बुद्धे तव पित्रापि दुर्धराम्।
शिखा यज्ञोपवीताभ्यां श्रुतेर्भारो भविष्यति॥

रे मूर्ख! मैं जो गुदड़ी लिए फिरता हूँ वह तेरे बाप से भी कठिनता से उठाई उठेगी, शिखा और यज्ञोपवीत से तुझे ही नहीं किन्तु श्रुति (वेद) को बोझ मालूम होगा। क्योंकि श्रुति में लिखा है कि संन्यासी को शिखा, यज्ञोपवीत की आवश्यकता नहीं।

अथ परिव्राड् विवरण नाम्ना मुण्डो परिगृहम् ।

मण्डन—त्यक्त्वा पाणिगृहीतां स्वामशक्तः परिरक्षणे ।
शिष्य पुस्तक भारेच्छोर्व्याख्याता ब्रह्मनिष्ठता ॥

अपनी विवाहिता स्त्री का पालन पोषण न कर स
इसलिए उसे छोड़ कर शिष्य और पुस्तकों के बोझ की
करनेवाले तेरी ब्रह्मनिष्ठता भली प्रकार जान ली ।

शंकर—गुरु शुश्रूषणालस्या त्समावर्त्य गुरोःकुलात् ।
स्त्रियः शुश्रूषमाणस्य व्याख्याता कर्म निष्ठता ॥

गुरू की सेवा शुश्रूषा में आलसी गुरुकुल से समाव
करा कर स्त्रियों की सेवा करने वाले तेरी कर्म निष्ठा तो बहुत
अच्छी तरह जान ली गई ।

मण्डन—स्थितोऽसि योषितां गर्भे ताभिरेव विवर्धितः ।
अहो कृतघ्नता मूड ! कथं ता एव निन्दसि ॥

रे मूर्ख ! जिन स्त्रियों के गर्भ मे तू रहा और जिन्होंने
पाला पोषा तू अब उनकी ही निन्दा करता है, इस कृतघ्नता
भी यही ठिकाना है ।

शंकर—यासां स्तन्यं त्वया पीतं यासा जात,
तासु मूर्खतम स्त्रीषु पशुवद्र

जिनका तूने दूध पिया
में तू पशु के समान रमण
हो गई ।

मण्ड मन

गार्हपत्य, दाक्षिण और आहवनीय इस प्रकार की अग्नि का नाश करके तू धीरहत्या (इन्द्रहत्या) का पापी हुआ है क्योंकि श्रुति में लिखा है—

वीरहा वा एषदेवानां योऽग्नीमुद्वासयति ।

संन्यासी इन तीनों प्रकार की अग्नि को त्याग देता है ।

शंकर—आत्महत्या मवाप्नस्त्वंमविदित्वा परमं पदम् ।

परमपद को न जान कर तू तो आत्महत्या का पापी हुआ है । 'असन्नेव स भवति' इत्यादि श्रुति प्रमाण है ।

मण्डन—दौवारिकान् वञ्चयित्वा कथं स्तेन वदागतः ।

चोर की भाँति ड्योढ़ीवानों को धोखा देकर कैसे आया ?

शंकर—भिक्षुभ्योऽन्नमदत्वा त्वं स्तेन वद्भोक्ष्यसेकथम् ।

अतिथियों को अन्न न खिला कर चोर की भाँति कैसे खाता है ?

मण्डन—क्व ब्रह्म क्व च दुर्मेधाः क्व संन्यासः क्व वा कलिः ।

स्वाद्वन्न भक्ष्यकामेन वेषोऽय योगिना धृतः ॥

कहाँ ब्रह्म, कहाँ दुर्बुद्धि, कहाँ संन्यास, कहाँ कलि गृहस्थों को धोखा देकर सुस्वाद भोजन करने के लिए यह सन्यासी का रूप तूने धारण किया है ।

शंकर—क्व स्वर्गः क्व दुराचारः क्वाग्निहोत्रं क्व वा कलिः ।

मन्ये मैथुन कामेन वेषोऽय कर्मिणां धृतः ॥

कहाँ स्वर्ग, कहाँ दुराचार, कहाँ अग्निहोत्र, कहाँ कलि, मेरी

अथ परिव्राड् विवरणा वासा मुण्डो परिग्रहम् ।

मण्डन—त्यक्त्वा पाणिगृहीतां स्वामशक्तः परिरक्षणे ।
शिष्य पुस्तक भारेच्छोर्व्याख्याता ब्रह्मनिष्ठता ॥

अपनी विवाहिता स्त्री का पालन पोषण न कर सका इसलिए उसे छोड़ कर शिष्य और पुस्तकों के बोझ की रक्षा करनेवाले तेरी ब्रह्मनिष्ठता भली प्रकार जान ली।

शंकर—गुरु शुश्रूषणालस्या त्समावर्त्य गुरोःकुलात् ।
स्त्रियः शुश्रूषमाणस्य व्याख्याता कर्म निष्ठता ॥

गुरु की सेवा शुश्रूषा में आलसी गुरुकुल से समावर्तन करा कर स्त्रियों की सेवा करने वाले तेरी धर्म निष्ठा तो बहुत ही अच्छी तरह जान ली गई।

मण्डन—स्थितोऽसि योषितां गर्भे, ताभिरेव विवर्धितः ।
अहो कृतघ्नता मूढ ! कथं ता एव निन्दसि ॥

रे मूर्ख ! जिन स्त्रियों के गर्भ में तू रहा और जिन्होंने तुझे पाला पोषा तू अब उनकी ही निन्दा करता है, इस कृतघ्नता का भी कहीं ठिकाना है।

शंकर—यासा स्तन्यं त्वया पीतं यासां जातोसि योनितः ।
तासु मूर्खतम स्त्रीषु पशुवद्रमसे कथम् ॥

जिनका तूने दूध पिया और जिनसे तेरा जन्म हुआ उन्हीं में तू पशु के समान रमण करता है, इस कृतघ्नता की तो हद ही हो गई।

मण्डन—वीर हत्या मवाप्तोसि वह्नीनुद्वास्य यत्नतः ।

वास्त्विनरः। यतितव्यमेव खलु तस्य जये निजपक्ष रक्षण-
यैर्भगवन्॥

भगवन्! जो अपने मत का खण्डन करे चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष, अपने पक्ष की पुष्टि करने के लिए उसके विजय में तत्पर होना चाहिए।

इस के अतिरिक्त सरस्वती ने प्राचीन समय में भी स्त्री पुरुषों के शास्त्रार्थ होने में प्रमाण दिया।

अतएव गार्ग्यभिधया कहलमह याज्ञवल्क्य मुनिराडकरोत्।
जनकस्तथा सुलभयाऽबलयाकिमती भवन्ति न यशोनिधयः,॥

महामुनि याज्ञवल्क्य ने गार्गी और महाराज जनक ने सुलभा के साथ शास्त्रार्थ किया था, क्या ये लोग यशस्वी न थे?

तब शास्त्रार्थ के लिए शंकर तयार हुए और उस शास्त्रार्थ में श्रुति (वेद) वाक्यों पर विचार किया गया।

अथ सा कथा प्रवृत्तेरम तयोरुभयोः परस्पर जयोत्सुकयोः।
मति चातुरी रचित शब्दभरी श्रुति विस्मयी कृत विचक्षणयोः॥

अब वह वाद प्रारम्भ हुआ जिस में एक दूसरे के विजय के लिए उत्सुक था। बुद्धि चातुर्य, शब्दगाम्भीर्य और श्रुति प्रमाण बड़ा ही आश्चर्य दायक था।

जब सरस्वती ने शंकर से स्त्री पुरुष विषयक प्रश्न किए तो उनसे उत्तर तक न हो सका।

स्त्री शिक्षा के विरोधी जो अपनी सम्पूर्ण शक्ति को इसके विरुद्ध ही लगा देते हैं किञ्चित् ध्यान दें।

समझ मे केवल विषय सेवन की कामना से कर्म कारिवर्गों का यह रूप तूने बना रक्खा है।

इस प्रकार छिग्तियों की मात्रा जब विशेष बढ़ी तब मंडन की स्त्री सरस्वती को मध्यस्था बनाकर शकर ने मण्डन को शास्त्रार्थ मे परास्त किया, तब सरस्वती ने शकर को शास्त्रार्थ के लिए आहूत किया।

(सरस्वती शंकर वाद)

सरस्वती—अपितु त्वयाद्य न ममग्रजितः।
प्रथिताग्रणीर्मम पतिर्यदहम् ॥
वपुरर्द्धमस्य न जितं यतिमन्।
अपि मा विजित्य कुरु शिष्यमिमम् ॥

हे शकर! आपने मेरे प्रसिद्धाग्रणी पतिदेव को अभी पूर्ण नहीं जीता क्योंकि उनकी अर्द्ध देह मैं हूँ, जब आप मुझे शास्त्रार्थ में परास्त करदें तब इनको शिष्य बनाइएगा।

शंकर—यदवादि वादकलहोत्सुकतां,
प्रतिपद्यते हृदयमित्यबले।
तदसाम्प्रत नहि महायशसो,
महिला जनेन कथयन्ति कथाम् ॥

तुमने जो शास्त्रार्थ के लिए अपना विचार प्रकट किया है सो ठीक नहीं है क्योंकि यशस्वी जन स्त्रियों के साथ वार्तालाप नहीं करते।

सरस्वती—स्वमतं प्रभेत्तुमिह यो यतते स वधूजनोस्तु यदि-

रखना हमने सुना है कि तुम अपने साथ यहाँ जोरू बदमाश लाते हो और मांड का बच्चा भी बनते हो यह हरकत निहायत खराब है अब तुम्हारे बाप का कौन एतबार करेगा तुम्हारे लड़के ने नकाल जाटिन से सुअर व नथ लिया है सो बेटे को अपने फाँसी दे देना नहीं तो बाँस की नोबत पहुँचेगी सो बेमौक़ा होगा, क्योंकि इसके पास काबुल भूत है।

४२—जज साहब और कुत्ता

एक वकील साहब किसी मुआमले में जज साहब से बहस कर रहे थे। और जज साहब का कुत्ता उन के पास बैठा था। जज का ध्यान बहस से जो उचटा तो अपने कुत्ते को प्यार करने लगे। वकील साहब चुप हो गए जज ने कहा आप अपनी बात कहिए चुप क्यों हो गए। वकील ने कहा—"जो आज्ञा, क्षमा किजिए मैं इस लिए चुप हो गया था कि शायद आप अपने इस मित्र से इस मुक़दमे के विषय में कुछ सलाह करते हो।"

४३—घड़ी की सुधरवाई चार घूँसे

एक मनुष्य किसी घड़ीसाज़ की दुकान पर गया और अपनी घड़ी सुधरने के लिए देकर पूँछने लगा, बताओ घड़ी की सुधरवाई क्या लोगे?

घड़ीसाज़—भाई साहब, घड़ी की सुधरवाई तो घड़ी की क़ीमत से भी दुगनी लगेगी।

मनुष्य—कोई हानि नहीं तुम सुधार दो। मैंने एक आदमी के दो घूँसे लगा कर उस से यह घड़ी छीन ली थी, तुम्हें दो के

४०–फ़ारसी का छारसी

एक फारसीदाँ मुशी से किसी पुरुष ने पूछा, मुंशी जी आप रोटी किस चीज से खाते हैं। यह बेतुका प्रश्न सुन कर मुशी जी झुंझला कर बोले, और किस चीज़ से खायेंगे खाते हैं दस्त से। यह सुन कर जितने पुरुष पास बैठे थे सब हँसने लगे।

४१–उर्दू लिपि

बिरादर अजीज़ अजजान सलामत ! बाद दुआ के वाजह हो कि हम यहाँ तुम्हारी नौकरी की फिक्र करते हैं और तुम्हारे सानी निकाह की तजवीज करते हैं, पस तुम जल्द चले आओ। और वालिद को पान के साथ खाने के लिए उमदा चूना (जो यहाँ नहीं मिलता) लेते आना। वह थोड़े से मुरब्बे भी चाहते हैं। इस का बहुत खयाल रखना हम ने सुना है कि तुम वहाँ अपने पास चोर वा बदमाश रखते हो, शायद गाँजा भी पीते हो सो यह हर-कत निहायत खराब है। अब तुम्हारी बात का कौन एतबार करेगा। तुम्हारे लड़के ने बकाल हामिल से सौ रुपया लिया है सो बनिए को अपने यहाँ से दे देना, नहीं तो नालिश की नौबत पहुँचेगी तो बेमौक़ा होगा, क्योंकि उसके पास कामिल सबूत है।

पढ़ागया

बिरादर अजीज अज़न सलामत ! याद दुआ के वाजे हो कि हम तुम्हारी टोकरी की फिक्र करते हैं और तुम्हारी नानी निकाह की तजवीज़ करती है पस तुम जल्द चले आओ अपने वालिद को माँ के साथ खाने के लिए उमदा जूता (जो यहाँ नहीं मिलता), लेते आना यह फोड़े से मरने भी चाहते हैं इस का बहुत खयाल

सुना हमने सुना है कि तुम अपने साथ यहाँ जोरू बदमाश रखते हो और साँड का बच्चा भी बनते हो यह हरकत निहायत खराब है अब तुम्हारे बाप का कौन एतबार करेगा तुम्हारे लड़के ने बकाल जाटिन से सुअर व नथ लिया है सो बेटे को अपने पानी दे देना नहीं तो बाँस की नौबत पहुँचेगी सो बेमौका होगा, क्योंकि इसके पास काबुल भून है।

४२—जज साहब और कुत्ता

एक वकील साहब किसी मुआमले में जज साहब से बहस कर रहे थे। और जज साहब का कुत्ता उन के पास बैठा था। जज का ध्यान बहस से जा उचटा तो अपने कुत्ते को प्यार करने लगे। वकील साहब चुप हो गए जज ने कहा आप अपनी बात कहिए चुप क्यों हो गए। वकील ने कहा—"जो आज्ञा, क्षमा किजिए मैं इस लिए चुप हो गया था कि शायद आप अपने इस मित्र से इस मुकदमें के विषय में कुछ सलाह करते हो।"

४३—घडी की सुधरवाई चार घूँसे

एक मनुष्य किसी घड़ीसाज़ की दुकान पर गया और अपनी घड़ी सुधरने के लिए देकर पूँछने लगा, बताओ घड़ी की सुधरवाई क्या लोगे ?

घड़ीसाज़—भाई साहब, घड़ी की सुधरवाई तो घड़ी की क़ीमत से भी दुगनी लगेगी।

मनुष्य—कोई हानि नहीं तुम सुधार दो। मैंने एक आदमी के दो घूँसे लगा कर उस से यह घड़ी छीन ली थी, तुम्हें दो के

स्थान में चार घूँसे लगा दूँगा। घड़ीसाज चुप हो गया और मुफ्त में ही घड़ी सुधार कर चुपके से उसके हवाले की।

४४-बाबू साहब

एक बाबू साहब को बीमारी की दशा में उन के सेवक ने औषधी के धोखे में स्याही पिलादी। जब सेवक ने बाबू साहब से कहा कि—"अपराध क्षमा हो, मैंने आज आप को औषधी के स्थान में स्याही पिलादी है।" बाबू साहब ने उत्तर दिया—"कुछ हर्ज नहीं, हम ब्लाटिंग पेपर निगल लेंगे।"

४५-कुँजड़ी और वकील

एक कुँजड़ी ने किसी वकील से पूँछा कि—"क्यों साहब यदि किसी का नौकर अपने मालिक के नाम किसी दुकान से कुछ सौदा ले जावे और दाम न दे, तो नालिश करने से दाम नौकर देगा अथवा मालिक?" वकील साहब ने कहा—"मालिक।" तब कुँजड़ी ने कहा कि—"आज एक महीना हो चुका आप का नौकर एक रुपये का सौदा लाया था, उसका दाम आप दीजिये।" वकील ने खिसिया कर एक रुपया जेब से निकाल कर कुँजड़ी को दे विदा किया।

दूसरे दिन वकील ने इस विषय का बिल बनाकर कुँजड़ी के पास भेजा कि जो रुपया कर्ज लेने का मस्विदा हम से पूँछा था उसका मेहनताना २५) रुपया होता है भेज दीजिए। कुँजड़ी बड़ी पछताई और दाम वापस कर क्षमा माँगी।

४६--मसखरा

किसी गाँव में एक मसखरे से किसी ने पूँछा—"भाई, इस गाँव का ठेकेदार कौन है ?" मसखरा बोला—"किसका ठेका पूछते हो, कोई भाँग का ठेका कोई गाँजे का, कोई घास का, कोई अफयून का, कोई शराब का ठेका लिए है।" तब उसने कहा—"मैं यह नहीं पूछता किन्तु यह जानना चाहता हूँ इस गाँव का ठाकुर कौन है।"

मसखरा बोला—"किन किन को बताऊँ। किसी के यहाँ सालिगराम, किसी के श्रीकृष्ण, किसी के बालमुकुन्द, किसी के गोपीनाथ, किसी के महादेव इत्यादि सबके यहाँ ठाकुर ही ठाकुर हैं आप किसको जानना चाहते हैं।"

उसने कहा—"भाई यह नहीं किन्तु इस गाँव का राजा कौन है ?" तब फिर मसखरा बोला—"कल एक चमार इस गाँव में मर गया था सो उसकी चमारिन रो रो कर हाय राजा, हाय राजा कह रही थी, इससे मैं जानता हूँ कि अपने अपने घर के सब ही राजा हैं। यदि सब नहीं, तो चमार राजा कल मर गया।"

४७--शेखचिल्ली

एक दिन शेखचिल्ली अपना गधा बेचने के लिए बाजार को लिए जा रहा था। शेखचिल्ली ने देखा कि गधे की पूछ कीचड़ में सनी है, झट काट कर अपनी थैली में रख ली और बाजार में पहुँचा। जहाँ बाजार लग रहा था, वहाँ एक मनुष्य ने पूछा—"इस गधे को कौन लाया है ?" शेखचिल्ली बोला—

"तुम इसके दाम चुका दो पूछ की फिक्र न करो, मैंने उसे काट कर अपनी थैली में रख लिया है यह देखो मौजूद है।" इस बात को सुन कर सब हँस पड़े।

४८—गुदड़ी का टुकड़ा

जाड़ो की रात में एक चोर किसी गृहस्थ के घर में चोरी करने घुसा, गृहस्थ बिचारा विशेष दरिद्री था वहाँ पहुँचते ही चोर ने सुना—यह गुदड़ी का टुकड़ा मुझे दो अथवा बच्चे को अपनी गोद में ला हे नाथ! आपके नीचे पयाल है और मेरे नीचे ज़मीन खाली है।

चोर ने जब दम्पति का इस प्रकार बातें करते सुना, तब उस गृहस्थ की दुर्दशा पर चोर का हृदय पिघल गया और दूसरी जगह से चुरा कर लाये हुए वस्त्रों को उनके ऊपर डाल कर वहाँ से रोता हुआ चला गया—

कन्था खण्डमिदं प्रयच्छ यदि वा स्वाङ्केगृहाणार्भकं,
रिक्तं भूतलमत्र नाथ भवतः पृष्ठे पलालोच्चयः।
दम्पत्योरिति जल्पतोर्निशिपदा चौरः प्रविष्टस्तदा,
लब्धं कर्पटमन्यतस्तदुपरि क्षिप्त्वा रुदन्निर्गतः॥

हा दरिद्रते! तेरी भी हद हो गई, एक पापात्मा चोर के कठोर हृदय में अपनी छाप मारी, इस अभागे भारत में इस समय करोड़ों स्त्री-पुरुष इस पूर्वोक्त श्लोक के उदाहरण हो रहे हैं, पर समर्थ पुरुषों का भी उनकी दीन दशा पर बहुत ही न्यून ध्यान जाता है।

हा हन्त हता मनोचिता!

४९—प्राचीन तथा नवीन पुरुषों की दशा

प्राचीन पुरुष,	नवीन पुरुष।
१—धर्म (प्रधान) शारीरिक, आत्मिक, मानसिक और संसारिक सुखों का समावेश धर्म में ही समझते थे।	१—धर्म (गौण) इन्होंने अपनी बुद्धि अनुसार धर्म को गौण तथा अन्य बातों को प्रधान मान रक्खा है, आत्मा का प्रश्न धर्म में शेष अन्य सब धर्म से पृथक्।
२—सादगी जीवन।	२—चमक दमक के प्रेमी।
३—आवश्यकता न्यून।	३—आवश्यकता अधिक।
४—सत्यनिष्ठ।	४—मिश्रित सत्य के प्रेमी।
५—भ्रातृ भाव के प्रेमी।	५—भ्रातृ भाव को मुख से प्रतिपादन करने वाले।
६—धन को जीवन का अंग समझने वाले।	६—धन को ईश्वर समझने वाले।
७—अपने तथा दूसरों के हित में तत्पर।	७—स्वार्थान्ध।
८—छल, कपट से रहित, किन्तु चतुर, निपुण।	८—चालबाज, बेईमान।

५०—कृपण सेठ

किसी नगर में एक कंजूस मक्खीचूस सेठ जी रहते थे। वह यहाँ तक कंजूस थे कि यदि कोई कथा वार्ता नगर में होती तो इस विचार से सुनने तक न जाते थे कि कदाचित् वहाँ जाकर पैसा, धेला कथा में चढ़ाना पड़े। एक बार उसी नगर के बहुत से पुरुषों ने मिलकर कथा बैठाई बड़े चाव से सुनने जाते और कहा करते यारो कथा तो बड़ी अच्छी होती है और अन्त में चरणामृत भी मिलता है तथा

करें हम तो छोट ही चाटते रह जाते हैं बड़ा ही स्वादिष्ट होता है।

एक बार इन सेठ जी की सेठानी ने कहा कि-"सब लोग कथा सुनने जाया करते हैं तुम भी सुन आया करो।" आप बोले-"वाह ! पैसा जो देना पड़ेगा वह कौन देगा, कथा के लिए मेरे पास पैसा वैसा नहीं है। बड़ी कठिनता से तो एक पैसा पैदा होता है दिन भर में कपड़े का एक आध खरीदार (ग्राहक) आगया तो दो चार पैसे वसूल होगये, फिर ग्राहक से भी घंटों जिर जिर करनी पड़ती है। तू कहती है कथा सुनने जाया करो। कथा में क्या धरा है दुकान पर बैठते हैं तो चार पैसे पैदा करते हैं। कथा में जाओ और अपनी नींद खोओ। जब कथा सुन कर आओ तो पिटे से चले आओ, हम ऐसी कथा नहीं सुनते। हमें तो वह कथा अच्छी लगती है जिस में चार पैसे पैदा हों।" जब सेठानी ने बहुत समझाया तो बोले—"अच्छा तो आज तेरे कहने से चले जायेंगे।"

दूसरे रोज़ रात को कथा प्रारम्भ हुई सब लोग इकट्ठे होगए, खोंचे वाले ने भी अपनी दुकान लगाली, पण्डित जी कथा कहने लगे परन्तु यह कंजूस साहब ज़रा देर से पहुँचे, अच्छी जगह न मिली तो वहीं एक दीवार के सहारे से बैठ गए कुछ देर तो आप कथा सुनते रहे लेकिन फिर थोड़ी देर के पश्चात् आँख लग गई और बैठे बैठे सुअर की तरह घुर्राने लगे। कथा समाप्त हुई और सब लोग चरणामृत ले अपने अपने घर चले गए। यह हज़रत कहीं ऐसी जगह बैठे थे जो चरणामृत बाँटने वाले को न दीख सके। कुत्ता आया और सोते हुए के मुँह पर

दीवार का भाग समझ कर टाँग उठा पेशाब करके चलता बना। अब इन हजरत की आँख खुली और होठों पर जो जीभ फेरी तो कुछ खारी सा जान पड़ा, सोचने लगे ओहो! चरणामृत बँटा परन्तु हम सो गए थे इस लिए पीछे से बचा खुचा हमारे भाग में आया, इस कारण खारी था। सच है-"सोवे सो खोवे, जागे सो पावे।" कहते कहते आपने घर पहुँचे। सेठानी ने पूँछा—"कहो लाला जी कथा सुनी?" तो आप बोले कथा तो सुनी और चरणामृत भी मिला परन्तु हम वहाँ जाकर सो गए इस लिए चरणामृत कुछ खारी सा ही हमारे हिस्से में आया। अब हम कल का जायँगे और सोवेंगे नहीं। दूसरे दिन सेठ जी कथा में सब से पहले ही पहुँचे और पण्डितजी के पास व्यासगद्दी से लग कर बैठ गए। पण्डितजी ने नित्य नियमानुसार कथा प्रारम्भ करदी। इधर इन हजरत को आलस्य ने दबाया और लगे घुर्राटे भरने, सोते २ स्वप्न देखने लगे कि दुकान पर बैठे हुए कपड़ा बेंच रहे हैं और गजों कपड़े का हिसाब किताब हो रहा है। आप कहते हैं कितने गज कपड़ा फाड़ूँ? ग्राहक दस गज देदो। प० जी की चपकन का सिरा हजरत के हाथ में था, बस गिनना शुरू किया, एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ, नौ, और लो यह दस एक दम से पण्डित जी की चपकन उड़ादी और बोले लो दस गज ही सही। पण्डितजी बोले—"अरे मूर्ख तूने यह क्या किया? तूने तो मेरी चपकन ही फाड़ दी, कथा सुनने आया है या कपड़ा बेचने?" यह बोला—"अजी पण्डितजी, क्या करूँ मुझे नींद आगई।" उस समय तो जो हुआ सो हुआ ही जब कथा समाप्त होने को हुई तो आप घर से पहले ही चल पड़े कि

कदाचित् कथा मे कुछ चढ़ाना पड़ जाय। लोगों ने कहा—"सेठ जी बैठो चरणामृत लेकर जाना, अब आरती हुई जाती है।" तो आप क्या बोले—"अच्छा भाई मै लघुशका तो हो आऊँ।" बस फिर क्या था हजरत लघुशका के बहाने नौ दो ग्यारह हो गए और अपने घर जा अपनी सेठानी से बोले—' मैं तो तुमसे पहले ही कहता था कि मुझे कथा सुनने मत भेज। १०) रु० की ओर ठुक गई, पण्डितजी का चपकन फट गया अब उन के लिए नया बनवाना पड़ेगा। आज से मैं कभी कथा सुनने न जाऊँगा।"

श्लोक—कृपणेन समो दाता न भूतो न भविष्यति।
स्पृशन्नेव विना याति परेभ्य न प्रयच्छति॥

कृपण के बराबर कोई दानी ही नहीं, न हुआ और न होगा, क्योंकि दूसरे मनुष्य यों ही कुछ दान कर देते हैं पर कृपण के लिए भोगना तो दूर किनार उसे छूता तक नहीं। वह अपना धन ज्यों का त्यों दूसरों को ही दे डालता है। अर्थात् दूसरों के लिए छोड़ मरता है।

ऐसे कृपण आज भारत मे सैकड़ों दृष्टि गत होते हैं। हम तो यही कहेंगे कि —

बढ़ना उसी का ठीक है जिस से हो फैज आम।
कंजूस मक्खीचूस का बढ़ना नहीं अच्छा॥

दो०—रहे न कौडी पाप की, ज्यों आवे त्यों जाय।
लाखन को धन पायके, मरे न कफ्फन पाय॥

५१–पुजारी करोड कल्प तक नरकगामी

एक बार श्रीरामचन्द्र जी महाराज से एक कुत्ते ने एक मनुष्य की कुछ शिकायत की और कहा–"महाराज, इस मनुष्य ने मुझे निरपराध मारा है, आप इसे दण्ड दीजिए।" तब भगवान् राम ने कहा–"अरे कुत्ते! तुम्हीं बताओ इस मनुष्य को क्या दण्ड दिया जाय।" तब कुत्ते ने कहा—

मठपति याको करहु प्रभु, कृपासिन्धु गुण ऐन।

हे प्रभु आप इस मनुष्य को मन्दिर का पुजारी बना दीजिए यही दण्ड इस के लिए उपयुक्त है, क्योंकि मैं भी पूर्वजन्म में मन्दिर का पुजारी ही था।

अब हम पुराण-स्मृतियों के वह वाक्य उद्धृत करते हैं जिन में पुजारी जी के लिए मार्शल्ला का विधान है।

श्वान श्वपचं प्रेतधूम्रम्; देव द्रव्योपजीविनम्।
स्पृष्ट्वा मठपतिंचैव सवासा जलमाविशेत्॥ याज्ञवल्क्य

कुत्ता, भंगी, चिता का धुआँ, देवता का द्रव्य खाने वाले और पुजारी इन को छूकर मनुष्य वस्त्रों के सहित जल में स्नान करे, तब कहीं शुद्ध होता है।

अभोज्य मठिनामन्न भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।
स्पृष्ट्वा देवलकश्चैव सवासा जलमाविशेत्॥ पद्मपुराण

पुजारी का अन्न न खाना चाहिए यदि खा ले तो चान्द्रायण व्रत करे। और पुजारी को छूकर तो कपड़ों के सहित स्नान करे तब शुद्ध होता है।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं द्रव्यमन्नं मठस्य च ।
नाश्नाति नरकान् घोरान् सेवेत चैकविंशति ॥ प्र० दु०

जो मनुष्य देवमन्दिर का पत्र, पुष्प, फल, जल और द्रव्य (चढ़ावा) खाता है वह इक्कीस बार नरक का वासी होता है।

नरकायत मतिश्चेत पौरोहित्यं समाचरेत् ।
वर्षयावत् किमन्येन मठचिन्ता दिनत्रयेत् ॥ पञ्चतन्त्र

यदि नरक जाने की इच्छा हो तो एक वर्ष तक पुजारी का काम करे अथवा तीन ही दिन मन्दिर की चिन्ता करे।

य इच्छेन्नरके गन्तुं सपुत्र पशु बान्धवम् ।
तं देवस्वधिपं कुर्यात् गोषु च ब्राह्मणेषु च ॥ ब्र० पु०

जिसे पुत्र, पशु और अपने बन्धुओं के सहित नरक भेजना हो उसे मन्दिर का पुजारी बनादे।

निर्माल्य शंकरादीनां स चाण्डालो भवेद्ध्रुवम् ।
कल्प कोटि सहस्राणि पच्यते नरकाग्निना ॥
पद्मपुराण

जो विप्र शिवपर चढ़ा हुआ पदार्थ एक बार भी खा लेता है वह अवश्य चाण्डाल हो जाता है और करोड़ कल्प तक नरक की आग में जलता रहता है।

चिकित्सकान् देवलकान् मांसविक्रयिणस्तथा ।
विपणेन च जीवन्तो वर्ज्याः स्युर्हव्यकव्ययोः ॥
मनु०

चिकित्सा करनेवाले, (हकीम) और मन्दिर के पुजारी और मांस बेंचनेवाले दुकानदार, ब्राह्मण को देव और पितृ कार्य में भोजनार्थ निमन्त्रण भूल कर भी न दे।

आदित्यं चण्डिका विष्णु रुद्रं चैव महेश्वरम्।
उप भुञ्जान्ति ये द्रव्य तेवै नरक गामिनः॥

ब्र० पु०

जो रुद्र चण्डिका, विष्णु और सूर्य का चढ़ावा खाता है वह नरकगामी होता है।

देवार्चन परो विप्रो वित्तार्थे वत्सरः त्रयम्।
असौ देवलको नाम हव्य कव्येषु गर्हितः॥

मिताक्षरा

जो विप्र तीन वर्ष तक मन्दिर का पुजारी बन कर धन ले उसे देवलक कहते हैं। ऐसे मनुष्य को देवकार्य तथा पितृ कार्य में भोजन कभी न कराए।

हमें पुजारियों की नरकयात्रा पर शोक है। क्योंकि मन्दिर के पुजारी के साथ इतना भयङ्कर अन्याय। क्या यम महाराज का इन पुजारियों से हार्दिक राग तो नहीं है? जिसके कारण यह मार्शल्ला का विधान है।

५२—विचार

किसी गाँव में एक जाट रहता था। था वह बड़ा चतुर, परन्तु भाग से स्त्री मूर्ख मिली थी जो कि भूत प्रेतादि को मानती थी। एक

दिन दैवयोग से उसे ज्वर आगया तो अपने पति से कहने लगी-"कि दूसरे गाँव में जो भगत (दइया) रिड़कू चमार रहता है उसे लिवा लाओ और उसे मुझे दिखाओ, वह कुछ कर देगा तो मुझे अवश्य आराम हो जायगा।" जाट ने सोचा कि रिड़कू क्या करेगा कोई हकीम नहीं जो दवा देदेगा। उसके पास जाने से क्या होगा। क्योंकि जाट था चतुर और अच्छे लोगों के पास बैठता था। कहने लगा—"अच्छा तो मेरे लिए कुछ थोड़ा सा भोजन बनादे मैं खाकर जाऊँगा, उसे यातो लिवा कर ही लाऊगा यदि वह न आया तो उससे कोई दवा लेता आऊँगा।" स्त्री उठी और ज्वर की ही दशा में कुछ थोड़ा सा हलुवा जाट के लिए बना दिया, वह हलुवा खा पीकर चलता हुआ और किसी दूसरे गाँव में नीम के पेड़ के नीचे जाकर सोगया जब सोकर उठा तो सोचने लगा कि उत्तर तो बनाना चहिये, अन्यथा उससे जाकर क्या कहूँगा। जब शाम को अपने घर आया तो स्त्री ने पूछा-रिड़कू नहीं आया? वह बोला—रिड़कू तो नहीं आया किन्तु एक दवा बता दी है। यदि तू उसे करले तो अवश्य लाभ हो जायगा परन्तु मुझे ऐसा मालूम होता है तू उस दवा को न कर सकेगी। स्त्री बोली-नहीं, तुम बतलाओ, जो होगी मैं जरूर कर लूँगी। तब जाट ने कहा—दवा तो यह है कि तीन साधुओं को नित्य प्रति भोजन करा कर स्वय भोजन किया कर। स्त्री बोली-यह कितनी बड़ी बात है। अब क्या था वही कार्य आरम्भ हो गया। आज और कल और, यह भी अच्छी हो गई एक बार ऐसा हुआ कि तीन दिवस तक कोई साधु नहीं आये तो बड़ी कठिनता पड़ी। अब कहने लगे क्या करें बच्चा भूख मरा, हम भूखों मरे जाते हैं। तब पुरुष ने सोच कर कहा—सुनती भी है, उसने यह भी कह दिया था कि जिस दिन को

साधु न मिले तो खाँड (मीठा) के साधु बाजार से बनवा कर ले आना और भोग लगा कर भोजन कर लिया करना। तब तो स्त्री ने कहा—ऐसा ही क्यों नहीं कर लेते। वह बाजार गया और खाँड़ के साधु बनवाकर ले आया। इतने में उधर असली साधु भी आ पहुँचे तो आप कहने लगे—आइये महाराज, आप की बड़ी प्रतीक्षा थी, आप भोजन कर लें। जो खाँड़ के साधु बनवा कर लाया था वह तो घर में रखवा दिये और स्त्री से कहा—जल्दी भोजन बना मैं अभी स्नान करके आता हूँ। उसके बच्चे ने खाँड़ के साधु देख कर कहा-माँ मैं तो साधु खाऊँगा। माँ ने कहा—बेटा एक तुम खाना, एक मैं खाऊँगी एक तेरे पिता जी खावेंगे। अब तो साधु परस्पर कहने लगे भाई यह घर तो मनुष्य खाना मालूम पड़ता है चलो यहाँ से निकल चलें अन्यथा आज आया गये समझो। बच्चे ने फिर रिरियाकर कहा-माँ मैं तो साधु खाऊँगा। उसकी माँ ने फिर वही उत्तर दिया तब तो साधुओं को पूरा निश्चय हो गया कि यह घर मनुष्य खाना है। बच्चे के यह शब्द सुनते ही साधु जंगल की ओर भागे, गाँव से बाहर गये होंगे कि इतने में जाट भी स्नान करके आगया। साधुओं को न देख स्त्री से पूछने लगा, साधु कहाँ गये? स्त्री बोली—अभी तो यहीं बैठे थे नहीं मालूम कहाँ गये। जाट ने पूछा—तुमने कुछ कहा तो नहीं था। स्त्री बोली—नहीं, मैं ने तो कुछ भी नहीं कहा। यह लड़का कह रहा था कि माँ साधु खाऊँगा। मैं ने यह कह दिया कि बेटा एक तुम खाना, एक तुम्हारे पिताजी खावेंगे और एक मैं खाऊँगी। पुरुष कुछ समझदार था समझगया। बोला—कितनी दूर गए होंगे। स्त्री बोली—अभी गाँव में ही होंगे। तब तो यह जैसे कुएं पर से आये थे वैसे ही रस्सी हाथ में लिए ही जंगल की ओर साधुओं के पीछे दौड़ा। साधुओं

जब इन्हें पीछे दौड़ते देखा तो कहने लगे भाई अरे ! आफत में फँसे देखो यह साला भागा चला आ रहा है। आज यह छोड़ेगा नहीं जरूर प्राण लेगा।

जब साधु भागते २ थक गये तो परस्पर कहने लगे— भाई जैसा करे श्री भगवान् ! मरना तो है ही, मर ही जायँ अब तो भागा जाता नहीं। तब जाट पास जाकर बोला–महाराज मुझे तीन दिन से भोजन नहीं मिला। तब तो उनके और रहे सहे भी प्राण पखेरू उड़ गये। साधुओं को जाट ने बहुत कुछ समझाया और कहा—आप चल कर भोजन करलें। परन्तु यह कहाँ सुनने वाले जीव थे। निराश हो जाट अपने घर को वापस लौट आया।

अब यह विचारिये इन साधुओं की भूल थी अथवा उस पुरुष या स्त्री की या बच्चे की। ठीक नतीजा निकल आयेगा किसी की भूल न थी केवल विचार में भेद था।

५३–पुण्डरीकाक्ष

एक समय पुण्डरीकजी शाण्डिल्य, भरद्वाज, च्यवन, आदि ऋषियों के पास इस उद्देश से गए कि चलें ईश्वर प्राप्ति के लिए इन महात्माओं से कुछ ज्ञान प्राप्त करें। शाण्डिल्य आदि ऋषियों के पास जाकर बोले–"महाराज ! ईश्वर प्राप्ति के लिए कुछ ज्ञान दीजिए।" तब ऋषियों ने कहा कि–"पहले तुम ज्ञान प्राप्त करने के अधिकारी बनो और तीन वर्ष तक योगाभ्यास तब तुम को कुछ बताया जा सकता है।"

पुण्डरीक योगाभ्यास करने लगे, एक बार ऐसा हुआ कि पुण्डरीकजी का भूख प्यास ने व्याकुल कर दिया इधर उधर अन्नचिन्ता में घूमने लगे। अकस्मात् एक चमार मार्ग में जाता हुआ इन्हें मिल गया, इन्हो ने अपनी क्षुधा की निवृत्ति के लिए भोजन माँगा। उस चमार ने इन्हें भरपेट भोजन कराया। जब इनकी जाति वालों को यह समाचार मिला कि पुण्डरीक जी ने एक चमार के यहाँ भोजन कर लिया है तो जाति वालों ने इन्हें अपने से पृथक् कर दिया, और इन में विशेष घृणा करने लगे, अब यह महाराज चमारो के पास गए और कहने लगे—मुझे अपनी जाति में शामिल करलो। चमारो ने कहा-महाराज आप ही हमें अपने में शामिल कर लीजिए। अब पुण्डरीकजी की त्रिशंकुवत् दशा हो गई। इधर के रहे न उधर के।

एक दिन पुण्डरीक जी चले जा रहे थे, इन्हें एक चमार की कुमारी कन्या ने देखा और इन पर मोहित हो गई अपने घर वालो से कहने लगी मैं अपना विवाह पुण्डरीकजी के साथ करूँगी। घर वालों ने बहुत कुछ समझाया परन्तु उसकी समझ में एक न आई। अन्त में इस चर्मकार कन्या का विवाह पुण्डरीक के साथ होगया। कन्या के माता पिता ने दहेज में पुण्डरीक जी को एक तोता और सुअर दिया, यह लेकर अपने स्थान को चले गए परन्तु जाति बहिष्कृत होने के कारण अपने स्थान पर न रह सके और अन्य किसी द्वीप में जाकर रहने लगे, वहाँ न खाने को अन्न और न रहने को स्थान था परन्तु यह अपने साथ तोता और सुअर ले गए थे, तोते ने बहुत सा अन्न अपनी चोंच में ला ला कर इकट्ठा किया और सुअर ने अपनी थोथड़ी से बहुत सी ज़मीन खोद डाली।

जब इसे पीछे दौड़ते देखा तो कहने लगे भाई अच्छी आफ़त में फँसे देखो वह साला भागा चला आ रहा है। आज यह छोड़ेगा नहीं जरूर प्राण लेगा।

जब साधु भागते २ थक गये तो परस्पर कहने लगे—भाई जैसा करें श्री भगवान्! मरना तो है ही, मर ही जायँ अब तो भागा जाता नहीं। तब जाट पास जाकर बोला—महाराज मुझे तीन दिन से भोजन नहीं मिला। तब तो उनके और रहे सहे भी प्राण पखेरू उड़ गये। साधुओं को जाट ने बहुत कुछ समझाया और कहा—आप चल कर भोजन करलें। परन्तु यह कहाँ सुनने वाले जीव थे। निराश हो जाट अपने घर को वापस लौट आया।

अब यह विचारिये इन साधुओं की भूल थी अथवा उस पुरुष या स्त्री की या बच्चे की। ठीक नतीजा निकल आयगा किसी की भूल न थी केवल विचार में भेद था।

५३—पुण्डरीकाक्ष

एक समय पुण्डरीकजी शाण्डिल्य, भरद्वाज, च्यवन आदि ऋषियों के पास इस उद्देश से गए कि चलें ईश्वर प्राप्ति के लिए इन महात्माओं से कुछ ज्ञान प्राप्त करें। शाण्डिल्य आदि ऋषियों के पास जाकर बोले—"महाराज! ईश्वर प्राप्ति के लिए कुछ ज्ञान दीजिए।" तब ऋषियों ने कहा कि—"पहले तुम ज्ञान प्राप्त करने के अधिकारी बनो और तीन वर्ष तक योगाभ्यास ~ तुम को कुछ बताया जा सकता है।"

पुण्डरीक योगाभ्यास करने लगे, एक बार ऐसा हुआ कि पुण्डरीकजी को भूख प्यास ने व्याकुल कर दिया इधर उधर अन्नचिन्ता में घूमने लगे। अकस्मात् एक चमार मार्ग में जाता हुआ इन्हें मिल गया, इन्हों ने अपनी क्षुधा की निवृत्ति के लिए भोजन माँगा। उस चमार ने इन्हें भरपेट भोजन कराया। जब इनकी जाति वालों को यह समाचार मिला कि पुण्डरीक जी ने एक चमार के यहाँ भोजन कर लिया है तो जाति वालों ने इन्हें अपने से पृथक कर दिया, और इन से विशेष घृणा करने लगे, अब यह महाराज चमारों के पास गए और कहने लगे—मुझे अपनी जाति में शामिल करलो। चमारों ने कहा-महाराज आप ही हमें अपने में शामिल कर लीजिए। अब पुण्डरीकजी की तृशङ्कुवत् दशा हो गई। इधर के रहे न उधर के।

एक दिन पुण्डरीक जी चले जा रहे थे, इन्हें एक चमार की कुमारी कन्या ने देखा और इन पर मोहित हो गई अपने घर वालों से कहने लगी मैं अपना विवाह पुण्डरीकजी के साथ करूँगी। घर वालों ने बहुत कुछ समझाया परन्तु उसकी समझ में एक न आई। अन्त में इस चर्मकार कन्या का विवाह पुण्डरीक के साथ होगया। कन्या के माता पिता ने दहेज में पुण्डरीक जी को एक तोता और सुअर दिया, यह लेकर अपने स्थान को चले गए परन्तु जाति बहिष्कृत होने के कारण अपने स्थान पर न रह सके और अन्य किसी द्वीप में जाकर रहने लगे, वहाँ न खाने को अन्न और न रहने को स्थान था परन्तु यह अपने साथ तोता और सुअर ले गए थे, तोते ने बहुत सा अन्न अपनी चोंच में ला ला कर इकट्ठा किया और सुअर ने अपनी थोथड़ी से बहुत सी ज़मीन खोद डाली।

पुण्डरीक जी ने उसमें अन्न बोया, समय आने पर फसल अच्छी हुई, अब वह आनन्द से अपनी चर्मण्वा पत्नी के सहित रहने लगे।

इधर अनावृष्टि हो गई मनुष्य भूख-प्यास से बहुत व्याकुल हो गए और अन्न की चिन्ता में इधर उधर घूमने लगे, अन्त में पुण्डरीक जी के पास जा प्रार्थना कर कहने लगे—महाराज! अब कुछ सहायता करो, हम भूख-प्यास से व्याकुल हैं। पुण्डरीक जी ने कहा—मैं स्वजाति की सेवा करूँगा मुझे तुम, लोगों ने अपने से पृथक् कर दिया है अब तुम्हारा और मेरा क्या सम्बन्ध है। निराश हो सब लोग शाण्डिल्य जी के पास गए और कर जोड़ विनय पूर्वक कहा—महाराज! हम क्या करें, अनावृष्टि के कारण देश में अकाल पड़ गया, अन्न उत्पन्न नहीं हुआ भूखों के कारण मरे जाते हैं। परन्तु पुण्डरीक के यहाँ विशेष अन्न उत्पन्न हुआ है वह हमें देते नहीं हम से घृणा करते हैं। महाराज ऐसा उपाय बताइये जिससे वह फिर हमारी ओर आजायँ और हमारी सहायता करें। तब शाण्डिल्य आदि ऋषियों ने कहा—इसका एक ही उपाय है कि उन का प्रायश्चित करलिया जाय, चलो उनका प्रायश्चित करलें। तब सब मनुष्य और ऋषि मिलकर पुण्डरीक के पास गए और उनका प्रायश्चित कर अपने में मिला लिया प्रायश्चित करते समय शाण्डिल्य ऋषि ने निम्नलिखित श्लोक पढ़ा जोकि ब्रह्मवैवर्तपुराण अध्याय ३१ श्लोक १५ में लिखा है—

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपिवा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

इस श्लोक को पढ़ कर उस चमार की लड़की के हाथ का बना हुआ दाल भात सबने सहर्ष मिल कर खाया।

इस श्लोक का अर्थ पौराणिक पण्डित विष्णुपरक किया करते हैं और कहा करते हैं कि कमल के से हों नयन जिनके ऐसे विष्णु महाराज के स्मरण करने से बाहर भीतर सब शुद्ध हो जाता है।

परन्तु जहाँ यह श्लोक है वहाँ यह पुण्डरीक की कथा भी आई है और उस कथा के अन्तर्गत ही यह श्लोक है। ऐसा अर्थ कदापि नहीं है जैसा हमारे भाई समझते हैं।

५४--पिण्ड भरना

एक सेठ और सेठानी किसी जगह रहते थे। एक पण्डे ने सेठानी से कहा—"तुम अपने पती को गया करने भेज दो।" सेठानी ने सेठजी से कहा कि—'तुम इस वर्ष गया जी में जाकर अपने पितरों का पिण्ड भर आओ, पण्डा जी कह गये हैं।" सेठजी बोले—"भला तू जानती है कि वहाँ कितना खर्च होगा। कम से कम कुछ भी न लगेगा तो १००) रुपये तो अवश्य ही लग जायँगे परन्तु मैं एक कौड़ा भी खर्च करना नहीं चाहता, तू कहती है गया कर आओ, भला मैं गया कैसे कर आऊँ।" जब सेठानी ने बहुत जिद्द की तो आप चलने को उद्यत हुए और चार आने पैसे लेकर गया को गमन किया। स्त्री बोली—"भला तुम चार आने में गया कैसे कर आओगे?" तो कहने लगे—"इन्हीं चार आने से कमाता कमाता गया पहुँच जाऊँगा।" आखिर आप चल पड़े और कुछ दूर किसी नगर में जाकर चार आने का कुछ शाक-मूली इत्यादि मोल लेकर बेच लिया, चार आने के पाँच आने होगए, पाँच आने

लड़के ने भीतर जाकर पराडा जी की बात सेठजी को ज्यों की त्यों सुना दी।

सेठ—कह दो कि इस समय चित्त ठीक नहीं है, फिर आना।

लड़के ने द्वार पर जाकर पराडा जी से सेठ की बात कह सुनाई।

पराडा—यह कह दो कि मैं चिकित्सा (इलाज) करना भी जानता हूँ एक गाली दे दूँगा तुरन्त आराम हो जायगा।

(सेठजी मनही मन कहने लगे भाई बड़ी कम्बख्ती आई मैं एक पैसा भी देना नहीं चाहता)।

सेठ—जाओ उससे कह दो, वह असाध्य हो चुके हैं और कोई दम के महिमान हैं, आप क्या चिकित्सा करेंगे।

पराडा—अच्छा तो भाई हम भी अब क्रियाकर्म कराकर ही जायँगे, पुस्तक पत्रा हमारे पास है, अच्छा है अन्त्येष्टि में हमारा हाथ भी लग जायगा, जाओ कह दो।

लड़के ने सेठजी से जाकर कहा—पिताजी पराडा तो ऐसे ऐसे कह रहा है।

सेठ—अच्छा तो मेरी अर्थी चर्थी बनाओ और तुम दोनों माँ बेटा रोने लगो।

स्त्री—भला हम कैसे रोने लगें, वैसे तो रोया भी नहीं जाता। भला तुम पोने पाँच आने के पीछे क्या तमाशा बना [illegible]।

सेठ—मैं एक पैसा तक भी न दूँगा तू या तो रोने लग, अन्यथा मैं रुलाना भी जानता हूँ। एक सोटा उठा कर मार दूँगा अभी रोने लगेगी। अब सेठानी जी सोचने लगीं यदि मैं न रोई तो यह मार मार रुलावेगा इस लिए रोने में ही भलाई है। सेठानी रोने लगीं, आस पास के पुरुषों ने अर्थी बनाई और 'राम राम सत्त है, राम राम सत्त है' कहते हुए श्मशान घाट को ले चले, पीछे पीछे पण्डा भी 'राम राम सत्त है,' राम राम सत्त है' कहता हुआ वहाँ पहुँच गया और चिता तयार कराई।

पण्डा जी ने लड़के से कहा कि-"भाई लड़के! अपने पिता जी से पूछो वह पौने पाँच आने देते हैं या नहीं।

लड़का—पिताजी, पण्डा पौने पाँच आने का सोना (स्वर्ण) माँगता है।

सेठ—मैं एक कौड़ी भी न दूँगा, तुम अपना काम करो। सेठ जी को चिता पर रख उन पर कन्डे आदि अच्छी तरह लगा दिए।

पण्डा—भाई लड़के! अब फिर पूछ देखो देते हैं या नहीं, अन्यथा फिर स्वाहा स्वाहा आहुतियाँ लगने लगेंगी।

लड़के ने चिता के पास जाकर सेठ जी से कहा—पण्डा जी कुछ कह रहे हैं।

सेठ—बकने दो, मैं एक कौड़ी भी न दूँगा, तुम आग लगाओ। लड़के ने फूस का कूँचा लेकर उस में अग्नि रख फूँक मार कर सर की ओर से पैरों की ओर भी अग्नि लगा

लड़के ने भीतर जाकर पण्डा जी की बात सेठजी को ज्यों की त्यों सुना दी।

सेठ—कह दो कि इस समय चित्त ठीक नहीं है, फिर आना।

लड़के ने द्वार पर जाकर पण्डा जी से सेठ की बात कह सुनाई।

पण्डा—यह कह दो कि मैं चिकित्सा (इलाज) करना भी जानता हूँ एक गाली दे दूँगा तुरन्त आराम हो जायगा।

(सेठजी मनही मन कहने लगे भाई बड़ी कम्बख्ती आई मैं एक पैसा भी देना नहीं चाहता)।

सेठ—जाओ उससे कह दो, वह असाध्य हो चुके हैं और कोई दम के महिमान हैं, आप क्या चिकित्सा करेंगे।

पण्डा—अच्छा तो भाई हम भी अब क्रियाकर्म कराकर ही जायँगे, पुस्तक पत्रा हमारे पास है, अच्छा है अन्त्येष्टि में हमारा हाथ भी लग जायगा, जाओ कह दो।

लड़के ने सेठजी से जाकर कहा—पिताजी पण्डा तो ऐसे ऐसे कह रहा है।

सेठ—अच्छा तो मेरी अर्थी वर्थी बनाओ और तुम दोनों माँ बेटा रोने लगो।

स्त्री—भला हम कैसे रोने लगें, वैसे तो रोया भी नहीं जाता। भला तुम पौने पाँच आने के पीछे क्या तमाशा बना रहे हो।

सेठ—मैं एक पैसा तक भी न दूँगा तू या तो रोने लग, अन्यथा मैं रुलाना भी जानता हूँ। एक सोटा उठा कर मार दूँगा अभी रोने लगेगी। अब सेठानी जी सोचने लगीं यदि मैं न रोई तो यह मार मार रुलावेगा इस लिए रोने में ही भलाई है। सेठानी रोने लगीं, आस पास के पुरुषों ने अर्थी बनाई और 'राम राम सत्त है, राम राम सत्त है' कहते हुए श्मशान घाट को ले चले, पीछे पीछे पण्डा भी 'राम राम सत्त है,' राम राम सत्त है' कहता हुआ वहीं पहुँच गया और चिता तयार कराई।

पण्डा जी ने लड़के से कहा कि-"भाई लड़के! अपने पिता जी से पूछो वह पौने पाँच आने देते हैं या नहीं।

लड़का—पिताजी, पण्डा पौने पाँच आने का सोना (स्वर्ण) माँगता है।

सेठ—मैं एक कौड़ी भी न दूँगा, तुम अपना काम करो। सेठ जी को चिता पर रख उन पर कन्डे आदि अच्छी तरह लगा दिए।

पण्डा—भाई लड़के! अब फिर पूछ देखो देते हैं या नहीं, अन्यथा फिर स्वाहा स्वाहा आहुतियाँ लगने लगें गी।

लड़के ने चिता के पास जाकर सेठ जी से कहा—पण्डा जी कुछ कह रहे हैं।

सेठ—बकने दो, मैं एक कौड़ी भी न दूँगा, तुम आग जलाओ। लड़के ने फूस का फूँना लेकर उस में अग्नि रख फूंक मार कर सर की ओर से पैरों की ओर भी अग्नि लगा

दी। तब पण्डा जी सेठ के सामने जाकर कहने लगे—"मैं तो तुझ से याचना करने आया था। तू अपनी हठ का पक्का है, पौने पाँच आने के लिए मरने को उद्यत हो गया, अब मैं तेरे सामने हूँ, तू जो चाहे सो माँगले!"

सेठ जी बोले-"नहीं महाराज, मुझे कुछ नहीं चाहिए, केवल वह पौने पाँच आने ही बख्श दीजिए।"

पण्डा—जा दुर्बुद्धे! तूने कुछ भी न माँगा, जा तुझे पौने पाँच आने का स्वर्ग ही दिया।

पाठक! ऐसे भी मनुष्य संसार में हैं जो मामूली सी बात पर (पौने पाँच आने पर) प्राण देने को तयार होंगे।

कुंडलिया—द्रव्य पाय के देत नहिं, और करै नहिं भोग।
निश्चय ताकी सम्पदा, होत और के भोग॥
होत और के भोग दण्ड दहु राजा माँगै।
अग्नि लगे जरिजाय चोर वंचक ले भागे॥
भाँति भाँति के दुःख उसी के कारण पावैं।
वा धन ही के काज मरे दुर्गति में जावैं॥

५५--दो बहनों का संवाद

प्रश्नोत्तरी--

दुलारी—खाना क्यों न खाया? गवैया क्यों न गाया?

इन्दिरा—गला न था।

दुलारी—रोटी क्यों जली ? माला क्यों सड़ी ?

इन्दिरा—फेरी न गई थी ।

दुलारी—पथिक क्यों न सोया ? मेम क्यों न गई ?

इन्दिरा—साया न था ।

दुलारी—ब्राह्मण क्यों न न्हाया ? धोबन क्यों पिटी ?

इन्दिरा—धोती न थी ।

दुलारी—घोरा क्यों न सिया ? पट्टी क्यों न बँधी ?

इन्दिरा—सूजा न था ।

दुलारी—पथिक प्यासा क्यों ? गधा उदासा क्यों ?

इन्दिरा—लोटा न था ।

दुलारी—माला क्यों न गूँधा ? बर्फी क्यों न बनी ?

इन्दिरा—खोया न था ।

दुलारी—पान क्यों सड़ा ? घोड़ा क्यों अड़ा ?

इन्दिरा—फेरा न था ।

दुलारी—उदास क्यों बनी ? भुजिया क्यों न बनी ?

इन्दिरा—सोआ न था ।

दुलारी—अनार क्यों न खाया ? वज़ीर क्यों न रक्खा ?

इन्दिरा—दाना न था ।

नोट—पाठक ! यह प्राचीन बातें जो हमारी बहनों तथा माताओं में थीं । जो एक स्थान पर बैठीं और प्रश्नोत्तरी छिड़ी, इसी कारण उनकी बुद्धि तीव्र और मनोगुणी होती थी ।

पाठक! इस का नाम था मैत्री, और यह भारतीय प्राचीन शिक्षा का फल था अब तो आकाश-पाताल का अन्तर है।

५७-बीर बल की बुद्धिमत्ता

एक बार मुसलमानों ने मिल कर बादशाह अकबर से प्रार्थना की—हुजूर हम इतने बड़े २ विद्वान और अनुभवी पुरुष हैं, आप हमारे मुकाबिले में एक साधारण पढ़े लिखे हिन्दू को बड़े २ अधिकार दिए हुए हैं, नहीं मालूम क्या कारण है जो हुजूर का अपनी जाति का कुछ भी पक्ष नहीं। तब बादशाह ने आज्ञा दी कि अच्छा जो कार्य हिन्दू कर सकते हैं यदि तुम उस कार्य को कर सकते हो तो तुम को यह अधिकार दिए जायेंगे, इस लिये अमुक तारीख को तुम सब हमारे प्रश्नों का उत्तर देने के लिये राज दरबार में उपस्थित हो।

यह आज्ञा पाकर सब अपने स्थान को चले गये और नियत तिथि की प्रतीक्षा करने लगे। तिथि भी आगई तब सब मुसलमान अधिकारी राज दरबार में उपस्थित हुए। बादशाह ने पूछा—"क्या तुम हमारे प्रश्नों का उत्तर दोगे?" सब ने हाँ करदी। बादशाह ने पूछा—"अच्छा बताओ कि इस समय राज दरबार में उपस्थित मनुष्यों के चित्त में क्या बात है?" यह सुन कर सब चुप होगए। उन मुसलमान अधिकारियों में से एक ने कहा—हुजूर इस के उत्तर के लिए एक सप्ताह मिलना चाहिये।" बादशाह मान गया। सब अपने २ मकान पर चले गए। सोचने लगे बादशाह को क्या उत्तर देंगे एक सप्ताह समाप्त होने को आया, किसी की

कुछ भी समझ में न आया। अन्तिम दिन सब राज दरबार में उपस्थित हुए। बादशाह ने पूछा—"कहो क्या उत्तर लाये ?" तो बोले—"हुजूर इसका उत्तर ही क्या लाते भला दूसरे के मन की बात कौन जान सकता है।" बादशाह बोला—हिन्दुओं में यही तो विशेषता है वे दूसरे के मन की बात बता देते हैं। देखो हम बीरबल को तुम्हारे सामने ही बुलाकर पूछते हैं। बीरबल बुलाया गया और वही प्रश्न जो उन से किया था पूछा। बीरबल बोला—"हुजूर यह क्या प्रश्न है सब उपस्थित मनुष्यों के चित्त में यही है कि हुजूर का इकबाल हमेशा क़ायम रहे।" फिर क्या था, सब ने कहा—ठीक है, सब के चित्त में यही बात है। बादशाह बोला—देखो हिन्दुओं में यही विशेषता है। जब बादशाह अपने महल में पहुँचे तो उनकी बेगम ने भी वही बात सामने रक्खी, जो कि उस का भाई सलावत उस से कह गया था। बादशाह बोला—"सुना बीरबल के बराबर इन में कोई भी बुद्धिमान नहीं है मैंने एक प्रश्न किया था, उस का उत्तर तो कोई दे न सका।" बेगम बोली—"आपके प्रश्न ही अडबड हुआ करते हैं, कोई रिवाजी प्रश्न कीजिए फिर देखिए कौन उत्तर देता है।" बादशाह बोला—"अच्छा हम कल ऐसा ही प्रश्न करेंगे। प्रातः होते ही सब को बुलवाया और कहा—"देखो मैं इस कागज पर एक रेखा खींचता हूँ, कागज भी न फटे और रबड़ आदि भी न लगे, किन्तु रेखा घट जाय।" सब के सब हैरान थे क्या करें बोले—"हुजूर यह रेखा इस प्रकार कैसे घट सकती है ?"

बादशाह बोला—बस यह भी प्रश्न हल न हुआ। फिर बीरबल को बुलवाया और कहा कि—"तुम इस रेखा को छोटी करो।" बीरबल ने तुरन्त पेन्सिल से उसी रेखा के पास एक बड़ी रेखा

खींच दी। देख कर सब बड़े विस्मित हुए और कहने लगे-भाई बीरबल बड़ा तीव्र बुद्धि है।

५८-असली जीवन

जब जापान में इस बात की आवश्यकता हुई कि रूसियों के आक्रमण को समुद्र में कुछ जहाज़ डुबा कर रोक दिया जाय। तो जापान के राजा मेकाडो ने कहा—"मैं प्रजा पर किसी प्रकार से बलात्कार नहीं कर सकता।" हाँ, जिन को ऐसे जहाजों के साथ समुद्र में डूबना स्वीकार हो वे अपनी इच्छा पूर्वक प्रार्थना पत्र लिखकर पेश करें।

फिर क्या था, सहस्रों प्रार्थनापत्र, आवश्यकता से भी अधिक, एक दिन में आगए। परन्तु अब इन प्रार्थनापत्रों में से चुनाव की आवश्यकता हुई। जिन प्रार्थनापत्रों को जापानी युवकों ने अपने शरीर से रुधिर निकाल कर लिखा था वे तत्काल ही स्वीकृत होगए।

जब जहाजों के साथ यह लोग अपने देश की रक्षा के निमित्त प्राण दे रहे थे। तो एक जहाज़ के कप्तान से किसी ने कहा—कप्तान साहब! आप को जो काम करना था वह तो कर चुके, अब आप अपने प्राण बचा कर चले जाइये। तब कप्तान ने मृत्यु को तृण समान मानते हुए उत्तर दिया—"क्या मैंने लौट जाने के लिए यहाँ पर आने को प्रार्थना पत्र भेजा था?"

यह है असली जीवन!

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥

मुझको काटे कहाँ है वह तलवार ।
दाग दे मुझको कहाँ है वह नार ॥
गरम मुझको करे कहाँ है वह पानी ।
हवा में कब ताब सुखाने की ॥
मौत को मौत न आयेगी ।
कसद मेरा जो करके आयेगी ॥

५६-अमरीकन युवकों की देशभक्ति

एक बार अमरीका में विद्या सम्बन्धी खोज के लिए जीवित मनुष्यों को चीरने की आवश्यकता हुई । कई मनुष्य अपनी अपनी छातियाँ खोल कर सामने खड़े होगए और कहने लगे—"लो हमें चीरो, हमें काटो, ईश्वर करे हमारी जान जाय, हमारी जीवित ही चीर फाड़ शुभ हो । यदि इस से विद्या की उन्नति हो और दूसरों का भला हो तो हमें चीरने में एक क्षण की भी देरी न की जाय ।"

पाठक गण ! इसे प्रेम कहें, या वीरता कहें, इसका नाम है अमली जीवन । जब तक हमारे भारत में भी इन शुभ विचारों के मनुष्य न बनेंगे तब तक देशोन्नति का स्वप्न मात्र देखना है ।

६०–निराश मत रहो

अली बाबा एक बहुत ही निर्धन मनुष्य थे और उनका समय बहुत बुरी तरह व्यतीत होता था। उनका बड़ा भाई बड़ा धनवान था और अली बाबा से विशेष ईर्षा रखता था, उनकी उन्नति को किसी दशा मे देख न सकता था।

भाग्य का फेर किसी की समझ में नहीं आता, अली बाबा के दिन फिरे। एक दिन अली बाबा जगल में लकड़ी काटने गए थे, वहाँ उन्हें एक सेना सी आती दिखाई दी। बिचारे डर के मारे एक वृक्ष पर चढ़ गए और छिप कर बैठ गए। वह कोई सेना न थी किन्तु उसी जगल मे रहनेवाले डाकुओं का एक समुदाय था, जिन्होंने अपने रहने को वहाँ स्थान बना रक्खा था और लूट मार का जो धन लाते, वह वहाँ जमा करते रहते थे।

डाकुओ के सरदार ने एक स्थान पर खड़े होकर कहा– "खुलजाय शम शम्" यह कहते ही एक बड़ा द्वार खुला और वे डाकू उस के भीतर प्रवेश कर गए। जब वे निकले तब भी सरदार ने वही 'शम शम्' की आवाज़ लगाई। द्वार खुलगया और वह समुदाय जंगल की ओर चलागया। अली बाबा वृक्ष पर चढ़े चढ़े सब कुछ देखते रहे और अपने मन में कहने लगे यह 'शम शम्' तो खूब अच्छा है। चट वृक्ष पर से उतरे और द्वार पर जाकर वहा 'शम शम्' की आवाज लगाई, द्वार खुल गया, अली बाबा द्वार के भीतर चले गए। भीतर जाकर देखा बहुत माल-असबाब भरा हुआ है। अली बाबा के हर्ष का ठिकाना न था। फूले अंग न समाए। जिन गधों को वह लकड़ी-

लादने के लिए ले गए थे उन पर अच्छी तरह अशर्फियाँ लादीं और अपने घर का रास्ता लिया अपने घर पहुँचे। फिर क्या था अली बाबा मालामाल हो गए। ईश्वर की लीला अपरम्पार है।

एक एक से एक एक को बढ़ कर बना दिया।
दाग किसी, किसी को सिकन्दर बना दिया॥

अली बाबा के भाई को जब यह समाचार मिला तो बड़ा दुखी हुआ, भावज तो जल कर राख हो गई।

पाठक! आज जो टुकड़ों के लिए मोहताज है, कल राजगद्दी का स्वामी बना दिखाई देता है, आज जिस के सर पर राजमुकुट सुशोभित है, कल सम्भव है वह गली गली मारा मारा फिरे। यही संसार की गति है नहीं मालूम ईश्वर क्या से क्या करदे।

अतएव मनुष्य को धन धान्य पूर्ण होकर उन्मत्त न होना चाहिए और न दुखी दरिद्र को निराश होना चाहिए, जो जिस अवस्था में है उस को उसी अवस्था में रह कर परमात्मा को धन्यवाद देते हुए आनन्द से रहना चाहिए।

६१–बड़ा कौन है?

एक बार बादशाह अकबर ने दरबारियों से पूछा कि सब से अधिक उत्तम पत्ता कौन सा है। एक ने कहा, पीपल का, दूसरा बोला कचनार का और तीसरे ने सब से अधिक बड़ा केले के पत्ते को बताया, परन्तु अकबर की सन्तुष्टि न हुई, बादशाह ने

"कि सब मिल कर राजा का पलंग उठाकर अमुक बगीचे में रख आओ, मैं भी साथ ही चलती हूँ।" दासियों ने इस चतुराई से पलँग उठाया कि राजा को कुछ खबर न हुई। सबेरा हुआ, राजा जब सो कर उठा तो अपने को बगीचे में पाया, रानी को पास बैठी देख बड़ा क्रुद्ध हुआ और फाँसी की आज्ञा दी।

रानी ने हाथ, जोड़ कर कहा—"स्वामिन्! अपराध क्षमा हो मैंने आप की आज्ञा का पालन किया, स्त्री को पति से अधिक प्यारी और सुख देने वाली कोई वस्तु नहीं है, आप के अतिरिक्त मुझे कोई वस्तु प्यारी न थी, आप मेरे ही थे इस कारण मैं आप को उठा लाई।" राजा रानी के चातुर्य को देख बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने लगा—प्यारी! मैं तो तुझ से अप्रसन्न नहीं था, यही बात देखने के लिए मैंने तेरी परीक्षा ली थी।

पत्यौ नित्यं नानुरक्ता कुशला गृह कर्मणि।
पुत्रप्रसूः सुशीला याः प्रिया पत्युः सुयौवना॥

जो स्त्री नित्य पति में प्रेम, गृह कार्यों में दक्ष, पुत्रवती, सुशील शोभा युक्त शरीर वाली होती है वह अपने पति को प्यारी होती है।

इमं धर्मं यथं नारी पालयन्ति समाहिता।
अरुन्धतीव नारीणा, स्वर्गे लोके महीयते॥

जो स्त्री एक मन होकर अपने धर्म का पालन करती है वह अरुन्धती की तरह स्वर्ग में आदृता होती है।

६४-पतिव्रत धर्म और योगबल

एक योगी वन में वृक्ष के नीचे बैठा था, सहसा दो कौवों ने उसी वृक्ष पर काँव काँव मचा कर योगी को क्रुद्ध कर दिया। ज्योंही उसने अपनी तीक्ष्ण दृष्टि ऊपर की ओर की, त्योंही वह दोनो कौवे मर कर वृक्ष से नीचे गिर पड़े। योगी अपना ऐसा प्रभाव देख कर बड़ा गर्वित होगया। एक बार वही योगी किसी गाँव में एक गृहस्थ के द्वार पर भिक्षार्थ गया, माता भिक्षा दे दे की आवाज लगाई। भीतर से स्त्री-कण्ठ से उत्तर मिला, ज़रा ठहरो। योगी बोला—हैं, यह अभागिनी स्त्री मुझे ठहरने को कहती है। मेरे योगबल को नहीं जानती। अभी यह इस बात को सोच ही रहा था कि भीतर से फिर आवाज आई–बेटा! क्रोध मत कर यहाँ कौवे नहीं रहते। अब तो योगी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। स्त्री के बाहर आने पर वह योगी उसके पैरों पर गिर पड़ा और कहने लगा–माँ तुमने यह बात कैसे जानी? स्त्री बोली–मैं एक साधारण स्त्री हूँ किन्तु मैंने सर्वदा अपने धर्म का पालन किया है। अभी मैंने जब तुम्हें ठहरने को कहा था तब मैं अपने रुग्ण पति की सेवा में लग रही थी।

पति सेवा ही मेरा धर्म है, अपने धर्म का पालन करने के कारण मेरा हृदय इतना निर्मल होगया कि मैं दूसरों के मनोगत भाव जान जाती हूँ।

पति शुश्रूषैव स्त्री काम्र लोकान् समश्नुते ।
दिनः 'पुनरिहायाता सुखानामम्बुधिर्भवेत् ।

याज्ञवल्क्य ।

पति की सेवा करने से कौन उत्तम लोक को प्राप्त नहीं करती, से स्वर्ग से अधिक सुख यहीं प्राप्त होता है।

था, उस १५० हाथ लम्बे सूत का भार केवल १ रत्ती भर था, पर ढाका जिले के सुनार गाँव में १७५ हाथ लम्बे सूत का भार १ रत्ती पाया गया था।

ढाके के रेजिडेन्ट ने सन् १८४६ ई० में एक पुस्तक लिखी थी। उस में लिखा है कि एक बार केवल आध सेर रुई में २५० मील लम्बा सूत तयार किया गया था।

(ख) एक कारीगर ने बादशाह अकबर को मलमल का एक थान बाँस की छोटी सी नली में रख कर भेंट किया था। वह थान इतना लम्बा चौड़ा था कि अम्बारी सहित हाथी ढक जाता था।

(ग) ढाके में जो खास मलमल बनती थी उसका थान १० गज लम्बा और एक हाथ चौड़ा होता था, इस १० गज वाले एक थान का भार केवल ८ तोला ४½ माशे होता था, इस का लिपटा हुआ एक थान अँगूठी के छिद्र में से पार हो जाता था।

(घ) एक बार एक कारीगर ने औरंगजेब को मलमल का एक थान भेंट में दिया था, जब उस थान को सात तह बना कर औरंगजेब की लड़की ने पहना, तब भी उसका सारा शरीर झलकता रहा।

महाकवि माघ ने वस्त्रों की सूक्ष्मता का वर्णन करते हुवे लिखा है।

तत्रापि स्पष्टतरेषु यत्र स्वच्छेषु नारी कुचमण्डलेषु ।
[illegible] साम्य दुकूलानि न नागतः केवल मध्वितोऽपि ॥

[illegible] प्रकार एक कवि ने और भी लिखा है—

वे चँदेरी आदि की कारीगरी अब है कहाँ ।
[illegible] ानियों की कुशलता सब है कहाँ ॥

करने के लिए रख दिया और आप स्वयं पति के चरण दबाने लगी। उस स्त्री का एक डेढ़ वर्ष का बच्चा खेलते खेलते अग्नि की ओर बढ़ने लगा, अनायास ही बच्चे का पैर अग्नि में आ पड़ा पतिव्रता स्त्री ने अपने पति को छोड़ कर जाना उचित न समझा परन्तु अग्नि की क्या सामर्थ्य जो उसके पुत्र को जला सके।

सुतं पतन्तं प्रसभीक्ष्य पावके,
न बोधयामास पतिं पतिव्रता।
पतिव्रता शाप भयेन पीड़ितो,
हुताशनश्चन्दन पङ्कशीतलः॥

पतिव्रता ने अपने पुत्र को अग्नि में गिरते देख कर भी पति को न जगाया पर पतिव्रता के शाप के डर से अग्नि चन्दन की भाँति शीतल हो गई और उसके पुत्र को न जलाया।

इस अपने धर्म की रक्षा करना स्त्रियों का मुख्य कर्त्तव्य है। अनुसूया ने रामायण में सीताजी को कैसे सुन्दर शब्दों में इस धर्म की महिमा प्रकट की है।

कह ऋषिवधू सरल मृदुबानी।
नारि धर्म कछु ब्याज बखानी॥
माता-पिता-भ्राता हितकारी।
मित सुख-प्रद सुन राजकुमारी॥
अमितदान भर्त्ता बैदेही।
अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी।

आपत काल परख ये चारी ।
वृद्ध रोगवश जड़ धनहीना ।
अन्ध बधिर रोगी अतिदीना ॥
ऐसेहु पति कर किये अपमाना ।
नारि पाव यमपुर दुख नाना ॥
एक ही धर्म एक व्रत नेमा ।
काय वचन मन पतिपद प्रेमा ॥

या भर्तारं समुत्सृज्य रहश्चरति केवलम् ।
ग्रामे वा शूकरी भूयाद्वकुली वाश्वविद् भुजा ॥
अनुकूला न वाग्दुष्टा दक्षा साध्वी पतिव्रता ।
एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न संशयः ॥

७०—गहने से स्त्रियों का प्रेम

एक बार रात्री को किसी के घर में आग लग गई । पुरुष बच्चों को गोद में उठा कर घर के बाहर निकल आया और स्त्री को निकाला । स्त्री रोने लगी हाय, मेरे कपड़ों का सन्दूक जल जायगा गहनों की सन्दूकची जल गई तो फिर ऐसे गहने कहाँ बनेंगे ।

पुरुष ने बहुत समझाया परन्तु वह रोती ही रही, कहा कि मेरी सन्दूकची न जलने पावे चाहे कपड़ों का सन्दूक जल

जाय, जैसे भी बने सन्दूकची निकालनी चाहिए। स्त्री को अधिक रोते देख कर वह मनुष्य गहनो की सन्दुकची निकालने घर में घुसा। जब तक वह लौटा न था कि उसके कपड़ों में आग लग गई, कपडों की आग बुझाने में गहनों की सन्दुकची हाथ मे छूट गई, वह पुरुष बड़ी कठिनता से बाहर आया और अचेत होकर गिर पड़ा शरीर मे छाले पड़ गए थे, वर्षों चिकित्सा कराने पर भी अच्छा न होसका, अन्त में ससार से कूच कर गया।

धिक्कार है! ऐसी स्त्रियों को जो अपने पति को गहने और कपड़ों की चिन्ता मे डालती हैं।

७१--भेद से हानि

एक बढ़ई वन में लकड़ी काटने के लिए गया। वहाँ वन में जाकर बैठ गया और विचारने लगा कि कुल्हाड़ी मे बेंटा नहीं है इस लिए किसी वृक्ष से टहना काट कर बेंटा बनालू। बढ़ई वन में सब वृक्षों पर हो आया परन्तु किसी वृक्ष ने अपना टहना न काटने दिया। क्योकि वे जानते थे यदि इसकी कुल्हाड़ी में बेंटा पड़ गया तो हमारा सर्वनाश किए बिना न छोड़ेगा। अस्तु अन्त मे एक पुराने वृक्ष ने कहा—भाई घबराओ मत यह हमको कहाँ तक काटेगा क्योंकि हम तो संख्या मे बहुत अधिक है।

अन्त मे बढ़ई ने एक सूखे वृक्ष मे टहना काट कर अपनी कुल्हाड़ी में बेंटा डाल लिया। फिर क्या था देखते देखते बढ़ई ने

सारा वन काट डाला। तब वृक्षों ने कहा—"भाई बिना भेद बढ़ई कुछ भी नहीं कर सकता था। यदि हम सूखे वृक्ष से टहना न काटने देते तो आज हमारा सर्वनाश क्यों होता।"

यत्रात्मीयो जनो नास्ति, भेदस्तत्र न विद्यते।
कुठारे दण्ड निर्मुक्ते, भिद्यन्ते तरवः कथम्॥

अपने आदमियों के बिना कभी भेद प्रकट नहीं हो सकता, यदि कुल्हाड़ी में से बेंटा निकाल लिया जाय तो फिर वृक्षों को काटना कठिन ही है।

कुठार मालिकां दृष्ट्वा कम्पिता सकला द्रुमाः।
वृद्धस्तरुरुवाचेद स्व जातिनैव दृश्यते॥

कुल्हाड़ी को देख कर, सारे वृक्ष काँपने लगे तो एक पुराने वृक्ष ने कहा—भाई यहाँ अपना कोई नहीं है।

७२—अफ़ीमची की पिनक

एक अफीमची सायंकाल के समय अफ़ीम घोर कर पीकर पाखाने की हाजत होने पर घर की टट्टी में जा डटे। पाखाने के ऊपर छत का परनाला था, इत्तफाक से अफ़ीमची साहब की बीवी को पेशाब लगी तो उसने अपने नित्य नियमानुसार छत के परनाले पर जा कर पेशाब किया। नीचे उन हजरत के सर पर घलघलाते हुए आगिरा, तो आप पीनक से उचक भूत की तरह मिनमिनाते हुए बोले—

बल्लाह, क्या खूब मालूम होता है कि रहमने बाँगें शुरू हो गईं। यह बात अफ़ीमची साहब की पुत्र-वधू जो पहली ही वार अपने घर आई थी, टट्टी के ऊपर छत पर खड़ी हुई सुन रही थी, वहू ने चोर के छिपने की शंका की, वह खूब ज़ोर से एक साथ ही चोर चोर करके चिल्ला पड़ी, बहू की आवाज़ सुन कर उसका पति और सास भी दौड़ी, मारो, लेना है, दौड़ो, चोर है चोर है करके हल्ला मचा दिया।

एक हँडिया जो कोठे पर रक्खी थी जिसमें किसी ने छोटे बच्चे का पाखाना डाल राख से ढक दिया था। उस बहू ने जब और कुछ न पाया तो उस हँडिया को उठा कर अफीमची के सर पर तान कर मारा तो हँडिया भड़ाक से फूट गई। अफ़ीमची साहब के शरीर पर पाखाना ही पाखाना होगया, और मुँह के बल खुड्डी में गिरपडे। सामने के तीन दाँत टूट कर मुँह खिड़की सा बन गया और जो आता गया, अँधेरे में विना पूछ जाँच कर दे घूसा और दे जूता करने लगा। सैकड़ों मोचीपत्र मियाँ की चाँद पर पड़े। हल्ला-गुल्ला सुन कर पुलिस वाले भी आ पहुँचे और जब दीपक जलवा कर उन्होंने देखा तो घर के मालिक मियाँ बुर्दबार अली पड़े चुप कलहा रहे हैं।

सब लोगों ने बड़ा खेद प्रकट किया।

यह सब अफीम का ही फल है। इस के अतिरिक्त और क्या क्या हानियाँ इस से होती हैं। देखिए—

अफ़ीमा निद्रालुर्भवति मलरोधी च मनुजो,
विधत्ते प्रेतत्त्व गमयति च स्वासो नहि क्वचित्।
अनाप्ते तस्मिन्वै भवति बलहीनः प्रभुरपि,

तथैवाग्नेर्मान्द्यं भवति धननाशः प्रतिदिनम् ॥

अफ़्यून खाने वाले को रहता है दर्दोगम ।
तनहे नहीफ़ जोफ़ से उठता नहीं कदम ॥
गर्दन झुकाये रहते हैं पीनक में दम बदम ।
आँखों में ढलका चेहरे पर ज़र्दी कमर में खम ॥
दो चुसकियाँ जो पीं तो मिठाई की चाट है ।
दुनियाँ की नियामतों से तबीयत उचाट है ॥

कवित्त

खून को सुखाय देवै जिगर जलाय देवै धातु को फार देवै मुरदा करिडारे है। कान को मुँदाय देवै नाक को दबाय देवै नैन मुरझाय देवै दृष्टि को मारे है ॥ चाम सकुचाय देवै गले को बिठाय देवै जीभ को रुकाय देवै मौत को सम्भारे है । फ़ायदा अफ़ीम से न किसी को हो मित्र लोगों खाय जो अफ़ीम शीघ्र मौत को पुकारे है ॥

७३—तीर्थ यात्रा और चतुरा स्त्री

एक बार एक ब्राह्मण अपनी स्त्री सहित तीर्थ यात्रा के लिए गया। यात्रा अधिक लम्बी थी। कहीं रेल, कहीं डोली चलाना पड़ता था। कभी २ तो इतना दुर्गम मार्ग ... कि चलना तक कठिन हो जाता था,

ने कहा—नक्कू नहीं नरेन्द्र होगा। स्त्री बोली—नहीं जो सुनार बनाते हैं। एक ने कहा—क्या नथ नथ? दूसरा बोला—नहीं भाई नथी होगा। स्त्री नथ पहरने के छिद्र पर हाथ रख कर बोली—इस पर उनका नाम है। एक बोला—नत्थू। फिर भी कहा—यह भी नहीं जिस में फूल पहना जाता है। एक पुरुष ने कहा—ठीक है भाई नकछेदा होगा। तब स्त्री ने कहा—हाँ यही नाम है। नाम पता मालूम होने पर थाने में लड़के के खो जाने की रिपोर्ट लिखा दी, लड़का हाथ आगया और उसे उसके घर पहुँचा दिया गया परन्तु जो गहना लड़का पहने था वह किसी ने उतार लिया था।

देखो उस स्त्री ने अज्ञान वश कितनी आपत्ति उठाई।

७५- सुखी कौन है ?

एक चपरासी की स्त्री बड़ी चतुर थी, वह अपने घर का सब कार्य बहुत सोच समझ कर करती थी। सात रुपये मासिक आय और तीन प्राणी खाने वाले, निर्वाह हो तो कैसे हो?

यही सब कुछ सोच समझ कर वह स्त्री रोटी बनाने में जो लकड़ी जलती थीं उनका कोयला बुझाकर ।।।) मासिक कोयले वालों के हाथ बेच देती थी और आटे का चोकर दाल की चोई भी इकट्ठा करके कहारी के हाथ बनिये की दुकान पर भेज देती और उनके दाम मंगा लेती थी। इसी तरह उस स्त्री ने कुछ ही महीनों में सौ रुपये इकट्ठे कर लिए। एक दिन किसी जगह पर १५) रुपये मासिक की नौकरी खाली हुई, परन्तु उस नौकरी के लिए १००) की नक़द जमानत देनी पड़ती थी। पुरुष घर आकर रुपये की चिन्ता में पड़ रहा। स्त्री अपने पति को उदास

देख कर बड़ी चिन्तित हुई और उसके पास जा हाथ जोड़ कर बोली—"प्राणनाथ! आज आप उदास क्यों दिखाई देते हैं? कहिए स्वामिन् कोई कष्ट तो नहीं है? आप का मुख आज मैं मलिन क्यों देख रही हूँ?" पति ने सब समाचार सुनाया, कहने लगा—"हाय क्या करूँ यदि मेरे पास सौ रुपये होते तो अच्छी नौकरी मिल जाती।" स्त्री ने सुनते ही अपना सब जेवर उतार कर अपने पति के सामने रख दिया, और कहने लगी—"स्वामिन् मुझे अपने जेवर की बिल्कुल चिन्ता नहीं, आप शौक से ले जायँ और जमानत देकर नौकरी प्राप्त करें।"

वह बोला—"प्यारी मेरा यह धर्म नहीं कि तेरे शरीर की शोभा उतार कर नौकरी करूँ।" तब स्त्री ने उत्तर दिया—"स्वामिन्! स्त्री के शरीर की शोभा पति से ही है जेवर से नहीं, स्त्री का धर्म है कि यदि पति के सुख के लिए प्राण भी देना पड़े तो भी निषेध न करे। फिर जेवर की तो बात ही क्या, यह तो शरीर का मैल है।"

वह बोला—"तुझे धन्य है! आज कल तो ऐसी ही स्त्रियाँ अधिक हैं जो जेवर के लिए अपने पति से रात दिन तकरार रखती हैं, सोते उठते बैठते उन्हें जेवर का ही ध्यान, जेवर की ही कथा, अपना जेवर देना तो एक ओर रहता परन्तु और विशेष बनवाने के लिए देवासुर संग्राम मचाती रहती हैं।"

उस चपरासी ने स्त्री के कहने पर भी जेवर न लिया तो फिर उस स्त्री ने वह सौ रुपये जो उसने एकत्रित किए थे अपने पति को निकाल लाकर दे दिए। वह बड़ा ही प्रसन्न हुआ और जमानत दे नौकरी पर चला गया।

यदि हम कहें कि हाय ! यह प्रकाश बाहर के प्रकाश से मिल कर अपवित्र न हो जाय और यह विचार कर उस प्रकाश की रक्षा के निमित्त कमरा बन्द करदें, चिकें गिरादें, परदे डालदें, द्वार बन्द करदें, खिड़कियाँ लगादें, झरोखे बन्द करदें तो प्रकाश तत्काल ही जाता रहेगा और अन्धकार ही अन्धकार हो जायगा। ठीक यही दशा भारत में रही, इसी कुटिल नीति का हमने आश्रय किया, हम एकदम संसार से अलग हो गए, हमारा ज्ञान परिमित हो गया, हमारे विचार संकुचित भाव से परिपूर्ण हो गए, हमने जो कुछ समझा केवल अपने को ही समझा, यह समझना ठीक भी था परन्तु दूसरों से अपना सम्बन्ध विच्छेद ठीक न था, जिसका फल हमारा अन्धकूप में पतन हुआ, अविद्या के सिवा अन्य कुछ हाथ न लगा। लोगों ने कहाँ तक बातें जमाईं, कश्मीर के लिए कहा गया।

अगर फिर दौसंर रूए जमीन अस्त।
हमी नस्तो हमी नस्तो हमी नस्त॥

जापानी जब तक जापान में बन्द रहे निर्बल और पराधीन रहे जब अन्य अन्य देशों में गए बलवान् तथा स्वतन्त्र हो गए।

बहता पानी निर्मला, खडा सो गन्दा होय।
आबे दरिया बहे तो बेहतर।
इन्साँ रवाँ रहे तो बेहतर॥
पानी न बहे तो उस में दुर्गन्ध आवे।
खंजर न चले तो मोरचा खावे॥

गर्दिश से सदा मेरी माह का पाया ।
गर्दिश से फलक ने ऊरूज पाया ॥

६७-विद्या बल

एक कन्या जिस की अवस्था ११ वर्ष की थी अपने पिता के साथ कहीं जारही थी । एक बड़े स्टेशन पर गाड़ी बदली और उन्हें दूसरी गाड़ी में सवार होना पड़ा । डाक गाड़ी छोटे छोटे स्टेशनों पर नहीं रुकती । एक स्टेशन पर गाड़ी खड़ी हुई, उस लड़की का पिता पानी लेने के लिए गाड़ी से उतरा, पानी वाला कुछ दूर था जब तक वह पानी वाले से पानी न ले पाया था कि गाड़ी छूट गई, दोनों टिकट पिता के ही पास थे । गाड़ी जब अगले स्टेशन पर ठहरी तब वह लड़की स्टेशन मास्टर से यह कहने के लिए गाड़ी से उतरी कि मेरा टिकट मेरे पिता के पास है और वह पिछले स्टेशन पर रह गए हैं । पिता के पीछे रह जाने पर उस लड़की ने अपना सब जेवर उतार कर बांध लिया था उतरते समय भी उसने अपना जेवर अपने पास ही रक्खा । स्टेशन मास्टर से जाकर कहा-मेरे पिता पीछे रह गए हैं और मेरा भी टिकट इन्हीं के पास है ।

लड़की कहही रही थी कि गाड़ी छूट गई, लड़की ने दौड़ कर गाड़ी का नम्बर जिस में वह बैठी थी एक कंकड़ी से प्लेटफार्म पर लिख लिया और स्टेशन मास्टर को दिखलाया कि मैं इस नम्बर के डब्बे

रह गया है आप तार द्वारा मेरा असबाब उतरवा लें और मेरे पिता को भी तार दे दें कि तुम्हारी लड़की इस स्टेशन पर बैठी है, किसी बात की चिन्ता न करो। चार घंटे पश्चात् दूसरी गाड़ी में उसका पिता आगया और अपनी लड़की को साथ ले अगले स्टेशन पर जा उतरा वहाँ जाकर असबाब को भी स्टेशन मास्टर से कह कर ले लिया।

विद्या के बल से ही उस लड़की ने अपने पिता को भी आपत्ति में बचाया और अपना जेवर भी अपने पास रक्खा और आगे जाकर असबाब भी मिल गया।

यदि वह लड़की पढ़ी लिखी न होती तो उसको इतनी बुद्धि न होती, और सब प्रकार से आपत्ति में पड़ कर नाना प्रकार के दु:ख उठाती। देखो उसकी अवस्था भी ११ वर्ष की थी इसलिए प्रतीत होता है कि पढ़ी लिखी लड़की चाहे वह जिस अवस्था की हो बुद्धिमती हो जाती है और समय पड़ने पर अपनी अवस्था से अधिक अवस्था वाली स्त्रियों से अच्छा काम कर लेती है।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्न गुप्तं धनं।
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः॥
विद्या बन्धुजनो विदेश गमने विद्या परं दैवतं।
विद्या राजसु पूज्यते नतु धनं विद्या विहीनः पशुः॥

विद्या मनुष्य को विशेष रूपवान् करती है। विद्या गुप्त धन है, भोग, यश और सुख के देने वाली है, विद्या गुरुओं की भी गुरु है, विदेश में विद्या ही बन्धु है, राज दरबारों में विद्या का ही मान होता है, धन का नहीं। विद्याविहीन मनुष्य पशु है।

विद्या विनयोपेतो हरति न चेतांसि कस्य मनुजस्य।
काञ्चन मणि संयोगो नो जनयति कस्य लोचनानन्दम्॥

विद्या और विनय से युक्त पुरुष किस के चित्त को नहीं आकर्षित करता, काञ्चन और मणि के संयोग को देखकर किसकी आँखें प्रफुल्लित नहीं होतीं?

कुत्र विधेयो यत्नो विद्याभ्यासे सदौषधे दाने।
अवधीरणा क्व कार्या खल पर योषित्परधनेषु॥

(प्र०) यत्न कहाँ करना चाहिए (उ०) विद्याभ्यास में अच्छे औषधों और परोपकार में (प्र०) उपेक्षा कहाँ करनी चाहिए (उ०) दुष्ट, पर दारा और परधन में।

८०—एकादशी व्रत

एक दिन एकादशी का व्रत था बीरबल ने बादशाह को कहला भेजा कि आज मैं राज सभा नहीं आऊँगा। दूसरे दिन जब बीरबल सभा में गये तो बादशाह ने पूछा—बीरबल कल क्या काम था?

बीरबल—पृथ्वीनाथ! कल एकादशी व्रत था।

बादशाह—(हँसकर) एकादशी क्या चीज है?

बीरबल कुछ कहना ही चाहता था कि एक मुसलमान सरदार बोल उठा—जहाँपनाह! एकादशी मुहम्मद साहब की लौंडी है।

बीरबल बोला—जी हाँ, ठीक है, पर उसको रखते हिन्दू ही हैं। बादशाह सुनकर चुप होगए।

८१—लाला की चतुराई

एक राजा ने अपने मन्त्री से पूछा कि चारों वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में कौन वर्ण चतुर होता है? मन्त्री बोला–राजन्! विशेषत वैश्य, लाला चतुर होते हैं। तब राजा ने कहा–अच्छा इस बात की परीक्षा करनी चाहिए। दूसरे दिन शहर में घूमने निकले तो एक गली में एक लाला का मकान मिला। लाला की स्त्री कह रही थी कि अब निर्वाह कैसे हो, लड़के वाले भूखों मरे जाते हैं।

लाला जी ने कहा—घबराती क्यों है जिस दिन राजा के यहाँ नौकर हो गया मालामाल कर दूगा। राजा यह बात सुनकर वापस लौट आया और अगले दिन लाला को बुलाकर कहा कि—आज से तुम नौकर किए गए, परन्तु १०) मासिक से विशेष न मिलेगा। काम इतना होगा कि तुम अस्तबल में बैठे रहा करना। लाला ने राजा को धन्यवाद दे अस्तबल का मार्ग लिया।

दूसरे दिन प्रात उठकर घोड़ों की लीद उठा २ कर लाला सूँघने लगे, यह देख कर अस्तबल में रहने वाले लोग डरे। लाला से जाकर पूछा—लाला जी आप यह क्या कर रहे हैं? लाला बोला–कुछ नहीं! राजा ने मुझ से यह देखने को कहा है और इसी काम के लिए नौकर रक्खा है कि देखो, घोड़ों को

नित्य प्रति मसाला तथा दाना ठीक २ दिया जाता है अथवा नहीं। यह बात सुनकर वे सब घबरा गए और हज़ारों की भेंट लाला जी को देने लगे। एक महीना पश्चात् राजा ने लाला जी को बुला कर पूछा तो मालूम हुआ कि लाला जी ने पचीस हज़ार रुपये कमा लिए हैं, राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ।

दूसरे दिन राजा ने लाला को आज्ञा दी कि तुम नदी के तट पर बैठे २ लहरें गिना करो। लाला बोला—बहुत अच्छा। इतना कह कर लाला घाट पर जा बैठा और जो जहाज़ अथवा नाव आती तो उसे रोक देते और कहते कि ठहरो, जब हम लहरें गिन लेंगे तब तुम्हें निकलने देंगे। बिचारे व्यापारी जहाज़ों के रुकने के कारण अपनी हानि समझ कर हज़ारों रुपये लाला जी को भेंट देते थे। महीने के पश्चात् राजा ने उससे पूछा कि लाला क्या क्या कमाया? तब लाला ने अपनी कमाई २ लाख रुपये बताई। तब राजा ने सोचा कि अब ऐसा काम देना चाहिए कि जिसमें कोई शकल ही आमदनी की न हो। तीसरे महीने में राजा ने १०० मन मोतीचूर के लड्डू बनवाकर एक घर में रख दिये और लाला जी को देख रेख के लिये रख दिया। लालाजी लड्डुओं की रक्षा करने लगे। रोज लाला का यही काम था कि लड्डुओं को इधर से उधर बदलते रहें लड्डुओं के अदलने बदलने में उन से जो चूरा झड़ता अपने घर भिजवा देते। महीने के अन्त में राजा ने लाला को बुलाकर फिर आमदनी की बात पूछी तो मालूम हुआ कि इस नौकरी में लाला जी को २०० रुपये की आय हुई है। इस बात को राजा ने स्वीकार किया कि निस्सन्देह लाला चतुर होते हैं

८४—तुख्म तासीर कि सोहबत का असर

एक राजा ने अपने पण्डित जी से पूछा—"महाराज ? तुख्म तासीर कि सोहबत का असर ?" पण्डित जी ने उत्तर दिया—"तुख्म तासीर।" राजा ने कहा—"नहीं महाराज सोहबत का असर।" परन्तु महाराज ने नहीं माना, उस समय तो राजा चुप हो गया परन्तु कुछ विशेष दिन व्यतीत होने पर अपने खास स्थान के चारो ओर द्वारों पर जुए का सामान, रण्डी, शराब, मांस आदि रखवा दिया और वहाँ कुछ मनुष्यों को नियत कर आज्ञा दी कि जब पण्डित जी महाराज आवें तो उन से कहना—"महाराज ? इन चार बातों में से एक कर लीजिये, तब भीतर जा सकोगे अन्यथा नहीं।"

पण्डितजी पहले द्वार पर जब आये तो द्वार पर उपस्थित मनुष्यों ने कहा—"पण्डित जी महाराज ! एक प्याला शराब पीते जाइए तब भीतर जाइएगा। इसी प्रकार सब द्वारों पर पण्डित जी का अपनी २ रीति से स्वागत किया गया परन्तु जब पण्डित जी चौथे द्वार पर पहुँचे तो भीतर जाना चाहा, मनुष्यों ने भीतर जाने से रोका और कहा—महाराज! आइये दो हाथ ही फेकते जाइए इधर इन के चित्त में भी आगया कि जुआ इतना बुरा नहीं है, अच्छा दो दो हाथ खेल ही लें तब ही भीतर जायेंगे।

पण्डित जी खेल में इतने लीन हो गये कि भीतर जाना भी भूल गए। अब जुआ खेलते २ इन महाराज को प्यास लगी। मदिरा वालों ने अच्छा अवसर जान कर पानी के २ मदिरा पिला दी। फिर क्या था नशा अपना नशे की झोंक में यह महाराज अन्य काम भी

दुर्दशा से अपने स्थान भेजे गए। दूसरे दिन जब महाराज राजा से मिले तब राजा ने पूछा—"कहिए महाराज? तुख्म तासीर कि सोहबत का असर।" तब महाराज बोले—"पृथिवी नाथ! जैसे आप कहते हैं, वह ही ठीक है।"

श्रीकृष्ण के वाक्य—

पद्मयोनिः समुत्पन्नो ब्रह्मा लोक पितामहः।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातेरकारणम्॥
कैवर्त्ति गर्भ सम्भूतो व्यासो नाम महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातेरकारणम्॥
भिल्लिका गर्भ सम्भूतो वाल्मीकिश्च महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातेरकारणम्॥
क्षत्रिया गर्भ सम्भूतो विश्वामित्रो महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातेरकारणम्॥
हरिणी गर्भ सम्भूतो ऋष्यशृंगो महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातेरकारणम्॥
उर्वशी गर्भ सम्भूतो वशिष्ठो हि महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातेरकारणम्॥

(भारतसार)

८५—चार यार

एक बार शेख, सैयद, मुगल, और पठान यह चारों मिलकर परदेश को चले। चलते चलते मार्ग में एक बाग में ठहरे। दोपहर

लड़का मेरा नहीं है। इस लिए आपके पास में न्यायार्थ उपस्थित हुई हूँ। आप मेरा जीवित बच्चा मुझे दिलादें।"

यह सारी बातें हो जाने पर, दूसरी स्त्री बोली–"महाराज! यह स्त्री बिलकुल झूठ कहती है और आप को धोखा देकर आप सच्ची होना चाहती है। इसी का लड़का मरा है मेरा नहीं, मेरा जीवित लड़का मेरे पास है।" इस प्रकार दोनों स्त्रियों की बातें सुन कर सुलेमान बड़ा चक्कर में पड़ा। उनके कहने पर यह विश्वास न कर सका कि कौन झूठी है और कौन सी सच्ची। तब उसने एक नई युक्ति सोची, सोच कर अपनी सभा के सब उच्च अधिकारियों को बुला कर उनसे कहा कि–"इस समय ठीक ठीक निश्चय नहीं होता, कौन बात झूठी है और कौन सी सच्ची। इस लिए तुम इस जीवित बच्चे के दो टुकड़े करके आधा आधा दोनों को दे दो।"

बादशाह की आज्ञा को सुन कर जिस स्त्री का बच्चा मर गया था अपने चित्त में सोचने लगी, कि मेरा बच्चा तो मर ही गया इसका भी मर जाय तो अच्छा है। यही बात सोच कर उसने बादशाह से कहा–"महाराज! आपने जो आज्ञा दी है, बिलकुल ठीक है, मुझे स्वीकार है।" परन्तु बादशाह की बातें सुन कर दूसरी स्त्री के नेत्र भर आए, फूट फूट कर रोने लगी। रोते रोते वह स्त्री कहने लगी–"महाराज! लड़के के दो टुकड़े न कराए जायें किन्तु आप इस लड़के को इसी स्त्री को दे दीजिए।"

बादशाह ने सोचा, यदि यह जीवित लड़का इसका ही होता तो यह इस प्रकार मेरी बात को स्वीकार न करती और यह दूसरी स्त्री इस प्रकार विशेष दुखी न होती। क्योंकि पुत्र प्रेम माता को विशेष होता है। इस लिए बादशाह ने जीवित लड़का

जिसका था उसी को दिला दिया। वह स्त्री प्रसन्नता पूर्वक अपने लड़के को लेकर अपने घर चली गई और दूसरी स्त्री खिसियानी सी कर रह गई।

८८—ईश्वर जो करता है अच्छा ही करता है

किसी नगर में एक महात्मा रहते थे। नगर के बहुत से मनुष्य महात्मा के पास ज्ञान का उपदेश लेने आते थे, प्रायः यों मानो सब ही श्रेणी के पुरुष आते थे।

एक धनाढ्य महात्मा के उपदेश को विशेष ध्यान से सुनता और जो महात्मा जी कहते वेदवाक्य समझ कर उस पर श्रद्धा लाता। कुछ दिन पश्चात् उस धनाढ्य की स्त्री रुग्ण हुई उसने अपनी स्त्री का सारा वृत्तान्त महात्मा से जा सुनाया। महात्मा बोले—"बच्चा ! ईश्वर के भरोसे पर रहो, वह जो कुछ करता है अच्छा ही करता है।" इत्तिफाक से कुछ दिन पश्चात् उस धनाढ्य की स्त्री मर गई। बात छिड़ने पर महात्मा ने फिर वही बात कही कि—"जो ईश्वर करता है अच्छा ही करता है। ईश्वरीय इच्छा ऐसी ही थी, इस लिए संतोष करो और ईश्वर का स्मरण करते रहो।"

फिर कुछ दिन पश्चात् उस धनाढ्य का लड़का रुग्ण हुआ और इस असार संसार से चल बसा, धनाढ्य लड़के की मृत्यु से और भी विशेष दुखी हुआ। एक दिन जब वह महात्मा के पास गया, तब फिर महात्मा ने समझाया—"बच्चा ! पुत्र की मृत्यु का शोच करना वृथा है, परन्तु हाँ, हम यह जानते हैं

पुत्र शोक से बढ़ कर संसार में कोई दूसरा शोक नहीं है तब भी संतोष करो और ईश्वर पर विश्वास रक्खो, इसमें भी ईश्वर ने तुम्हारे लिए भलाई ही रक्खी होगी। ईश्वर जो करता है अच्छा ही करता है।" इस बार महात्मा की बात सुनकर धनाढ्य को बड़ा क्रोध आया, क्योंकि जिस का पुत्र मर गया हो फिर उसको ऐसा ज्ञानोपदेश भला प्रतीत नहीं होता, किन्तु-अग्नि में घी सा काम करता है। अब उस धनाढ्य ने अपने चित्त में सोच लिया कि इन महात्मा को जरूर मारूँगा क्योंकि बार बार ऐसी बातें तो सुनने में न आवेंगी।

रहे न बाँस, बजे न बाँसुरी।

अगली रात को वह धनाढ्य एक छुरी लेकर महात्मा को मारने के लिए उसके स्थान पर पहुँचा। द्वार बन्द था। धनाढ्य ने द्वार खटखटाया। खट खट शब्द को सुनकर महात्मा किवाड़ खोलने के लिए शीघ्रता से चले, परन्तु अँधेरा होने के कारण मार्ग में पड़ी हुई एक लकड़ी से ठोकर खाकर गिर पड़े और किवाडों तक न पहुँच सके। महात्मा के पैर में इतनी अधिक चोट आई कि वह बहुत देर तक बेहोश अवस्था में वहीं पड़े रहे। बहुत देर तक जब कोई किवाड़ खोलने न आया तो वह धनाढ्य अपने स्थान को वापस लौट आया।

फिर कई दिन पश्चात् उस धनाढ्य का शोक और क्रोध कुछ न्यून हुआ तो वह महात्मा के स्थान को इस अभिप्राय से चला कि देखें, कि महात्मा कहीं अन्यत्र तो नहीं चले गए। यदि हैं तो उस दिन द्वार-खोलने के लिए क्यों नहीं आए थे। महात्मा के पास धनाढ्य ने पहुँच कर देखा कि वह विशेष कष्ट में हैं, तब धनाढ्य ने महात्मा से पूछा—"महाराज! आपके

चोट कैसे लगी ?" महात्मा ने सब बातें सुना दीं। और अन्त में कहा—"भ्राता! मैं नहीं जानता कि ईश्वर ने यह कष्ट मुझे क्यों दिया है। परन्तु इतना अवश्य जानता हूँ कि जो ईश्वर करता है वह अच्छा ही करता है। मुझे जो कष्ट में पड़ना पड़ा इस में मेरी कुछ भलाई ही होगी।" इतना सुनते ही धनाढ्य की आँखें खुलीं अब उसको मालूम हो गया कि ईश्वर जो करता है अच्छा ही करता है, वह अपने दिल में बड़ा दुखी हुआ।

धनाढ्य ने महात्मा से कहा—"महाराज! जो आप कहते हैं ठीक ही कहते हैं। उस दिन मैं आप को जान से मारने आया था। यदि आप उस दिन द्वार खोल देते तो नहीं मालूम क्या २ अनर्थ होते। परन्तु ईश्वर ने आप के पैर तोड़ कर आप की प्राण-रक्षा की और मुझे महापातक से बचाया।

८६—चालाकी से हानि

बुगदाद में एक बड़ा चालाक नाई रहता था, जो अपने कार्य तथा बातें बनाने में विशेष चतुर था। वहाँ के बड़े धनियों को उसने अपने जाल में ऐसा फँसाया था कि उसे छोड़ और दूसरे नाई से बाल बनवाना पसन्द न करते थे। इस लिए उसे कुछ गर्व भी होगया था।

एक दिन एक लकड़हारा गधे पर लकड़ियाँ लादे हुए उस नाई की दुकान के सामने जा रहा था। नाई ने लकड़हारे से लकड़ियों का सौदा करके चार आने में खरीद लीं। जब उसने सब लकड़ियाँ नाई के द्वार पर डाल दीं और आने

पैसे माँगन लगा तो नाई बोला–"तुमने मुझे सब लकड़ियाँ क्यों नहीं दीं ? क्योंकि मैंने सब का ही सौदा किया था।"

लकड़हारा सब लकड़ियाँ दे चुका था। उसने कहा–"भाई अब मेरे पास एक लकड़ी भी नहीं है, जितनी लकड़ियाँ थीं मैं सब दे चुका।" यह सुन कर नाई ने गधे की पाखर (गोन) की ओर अँगुली उठा कर कहा कि–"यह मुझे दो।"

बिचारे लकड़हारे ने उसे बहुत समझाया, कि भाई पाखर (गोन) लकड़ियों के साथ नहीं बिका करती, परन्तु उसने एक न मानी और पाखर ले ही ली।

लकड़हारा रोता पीटता क़ाज़ी के पास पहुँचा। नाई भी उसके साथ साथ ही क़ाज़ी के यहाँ गया। क़ाज़ी उस नाई से बाल बनवाया करता था इस लिए क़ाज़ी ने उस बिचारे की बात पर ध्यान न दिया।

लकड़हारा निराश होकर दूसरे क़ाज़ी के पास गया और अपनी बात सुना कर न्याय के लिए प्रार्थना की। वहाँ भी यही दशा हुई। उसने भी उस बिचारे की कुछ बात न सुनी। अन्त में सब प्रकार से लाचार होकर लकड़हारे को खलीफा के न्यायालय में न्यायार्थ प्रार्थनापत्र पेश करना पड़ा।

खलीफा अपने न्याय के लिए बड़ा प्रसिद्ध था। और था भी न्याय प्रिय। उसने लकड़हारे की बातें सुन कर उसके कान में कुछ बातें कह दीं, वह प्रसन्नता पूर्वक अपने स्थान को चला गया।

कुछ दिनों पश्चात् वही लकड़हारा फिर उसी नाई की दुकान के सामने गया और बड़ी नम्रता से सलाम किया,

लकड़हारे ने अपने हाव भाव ऐसे बना लिए मानों पहली बातें बिलकुल ही भूल गया हो।

नाई यह देख कर विशेष प्रसन्न हुआ और जाना कि यह पहली सारी बातें भूल गया है। लकड़हारे ने नाई से कहा—"नाई साहब! मेरा विवाह होने वाला है इसलिए तुम मेरी और मेरे साथी की हजामत बनादो, जो कुछ तुम कहोगे मैं वही दे दूंगा।" नाई, पेरा गरा उटल पुच्छू की हजामत नहीं बनाता था इस लिए कहने लगा—"मैं तुम्हारी और तुम्हारे साथी की हजामत तो बना दूँगा, परन्तु एक रुपया लूँगा।" लकड़हारे ने नाई की बात स्वीकार करली।

लकड़हारा अपने साथी गधे को पहले ही बाहर बाँध आया था, स्वयं ही हजामत बनवाने बैठ गया। नाई ने उसकी हजामत बना दी और कहा कि—'अपने साथी को भी बुला लीजिए।" लकड़हारे ने अपने साथी गधे को नाई के सामने ला खड़ा किया और कहा कि—"यह मेरा साथी है, इसकी हजामत बना दो।" यह देख कर नाई बड़ा बिगड़ा और कहा कि—"कहीं गधे की भी हजामत बनती है। मैं इस गधे की हजामत नहीं बना सकता।" अन्त में उसका झगड़ा उसी खलीफा के न्यायालय में विचारार्थ गया। न्यायालय में आकर खलीफा से लकड़हारे ने कहा—"हुजूर? इसने नाई ने वायदा किया था कि मैं तुम्हारी और तुम्हारे साथी की हजामत बना दूंगा, मेरा साथी यही गधा है। अब यह नाई मेरे साथी की हजामत नहीं बनाता।" खलीफा ने नाई से पूछा कि—"क्या लकड़हारा सच कहता है अथवा झूठ?" नाई बोला—"यह ठीक कहता है, परन्तु मैं यह नहीं जानता था कि इसका साथी गधा है, यह इसकी हजामत बन-

चायेगा। हुजूर ही सोचें कि कहीं गधो की हजामत बनती है।"

यह सुन कर खलीफा ने उत्तर दिया कि-"निस्सन्देह गधो की हजामत नहीं बनती यह मैं मानता हूँ, परन्तु जलाने की लकड़ियो के साथ पालान भी तो नहीं बिका करती। अब तो तुम्हें लकड़हारे के साथी की हजामत अवश्य बनानी पड़ेगी।"

खलीफा की आज्ञा सुन कर सैकड़ो मनुष्यों के सामने उस धूर्त और चालाक नाई को गधे की हजामत बनानी पड़ी। उसकी सारी चालाकी और गर्व मिट्टी में मिल गया।

६०—साधु और दया

एक दिन एक साधु नदी में स्नान कर रहा था। साधु ने देखा कि नदी में एक बिच्छू बहा जा रहा है, बिच्छू उस समय तक जीवित था, साधु को उस बिच्छू की दशा पर दया आगई, क्योंकि साधु दयालु था। जैसे ही साधु ने बिच्छू को हाथ से उठा कर किनारे पर रखना चाहा वैसे ही उसने साधु के हाथ में डंक मार दिया। बिच्छू के काटते ही साधु बिलबिला उठा और दर्द के कारण विकल हो गया, यहाँ तक कि बिच्छू साधु के हाथ से फिर पानी में गिर पड़ा। साधु दयालु था, उस को फिर दया आगई और उसे पानी में से उठा लिया। बिच्छू ने अपने स्वभावानुसार फिर डंक मारा, परन्तु साधु ने इस बार उसके डंक को सहन कर लिया और तुरन्त किनारे पर रख दिया। नदी के किनारे पर खड़ा हुआ एक पुरुष यह सब कौतुक देख रहा था। उसने साधु से कहा-"महात्मन्! आप ऐसे दुष्ट जीव पर दया क्यों करते हैं? जो उपकार के बदले आप के हाथ में डंक मारता

है ?" साधु ने उत्तर दिया कि-"ईश्वर ने मेरा और इस बिच्छू का स्वभाव पृथक पृथक बनाया है । मेरा स्वभाव दया करने का और इसका डक मारने का है, इसको कष्ट में पड़ा हुआ देखकर मुझ से न रहा गया मैने इसकी रक्षा के निमित्त इसे नदी में से निकालना चाहा परन्तु जब इसने डक मार कर मुझे विकल कर दिया, मैने घबरा कर छोड़ दिया।

उसी समय मैंने विचारा कि देखो मरण समय तक भी बिच्छू अपने स्वभाव को नहीं भूलता, डक मारना नहीं छोड़ता तो फिर कितनी लज्जा की बात होगी, यदि मैं मनुष्य होकर तनिक से कष्ट से अपना स्वभाव छोड़ दूँ । यही विचार कर मैंने दया से बिच्छू को नदी से निकाल कर किनारे पर रख दिया।

मनुष्य को चाहिए यदि उस पर कितने ही कष्ट क्यों न पड़ें अपने धार्मिक स्वभाव को न छोड़े । तुम उनके साथ भलाई ही करो जो तुम्हारे साथ बुराई करने पर उतारू होजाते हैं। जब दुष्ट अपनी दुष्टता से बाज नहीं आता, तो साधु पुरुष अपनी साधुता से क्यों बाज आये।

६१--आपस की फूट से नाश

एक जंगल में तीन सांड (बिजार) साथ २ ही चरा करते थे । और रात्री हो जाने पर भी एक ही स्थान पर सोते थे । उन में परस्पर इतना प्रेम था कि एक घड़ी भी एक दूसरे से पृथक न रहते थे।

जिस जङ्गल में यह साँड रहते थे उसी जंगल में एक सिंह भी रहता था। वह इन साँडों को दूर से देखता और चाहता था कि मैं इनको मार कर खा जाऊँ। परन्तु वे तीनों सदा एक साथ ही रहते थे इस लिये सिंह को उन्हें मारने का साहस न होता था।

एक दिन एक चालाक लोमड़ी ने सिंह से आकर कहा—"आप इतने उदास क्यों रहते हैं।" सिंह ने अपनी उदासी का वृत्तान्त लोमड़ी से कह सुनाया। लोमड़ी वैसे भी बड़ी धूर्त्त और चालाक होती है, कहने लगी—"अब घबराइए नहीं अभी जाकर उन में परस्पर फूट उत्पन्न कर दूँगी, फिर आप इच्छानुसार उनको मार कर खाजाइएगा।" लोमड़ी सिंह के पास से चल कर साँडों के पास आई और उन से बात चीत करने लगी। पहले एक साँड से चुपके से कहा—"देखो तुम बड़े बलवान् और परिश्रमी हो परन्तु तुम्हारे साथी बड़े ही लालची हैं ये सब अच्छी २ घास स्वयं खा जाते हैं और तुम्हारे लिए गन्दी घास छोड़ देते हैं, ये चाहते हैं कि तुम कमजोर हो जाओ। तुम इन का साथ क्यों नहीं छोड़ देते। इन से पृथक रह कर अच्छी २ घास आनन्द से चरा करो।" एक से ऐसी बातें बना कर लोमड़ी दूसरे के पास गई, और उससे भी ऐसी ही बातें करने लगी।

ये बेवकूफ साँड लोमड़ी के झाँसे में आगए और परस्पर डाह करने लगे। द्वेष के कारण उन में परस्पर लड़ाई होने लगी, जहाँ ये साथ २ रहते थे अब पृथक २ रहने लगे। फिर क्या था, सिंह की बन पड़ी, इसने साँड को इकला पाकर मार डाला और खा गया। इसी प्रकार सिंह ने एक एक कर के उन तीनों को खा लिया, बचा खुचा लोमड़ी के हिस्से में आया।

ठीक है आपस की फूट (वैर भाव) ऐसा ही होता है इसने जिस राष्ट्र, प्रान्त, नगर, गाँव, घर और व्यक्ति में स्थान पा लिया उस का सर्व नाश करके ही छोड़ा है।

९२–निन्यावे का फेर

एक गाँव में एक मोची रहता था, चमड़े का काम करके अपना और अपने कुटुम्ब का पालन करता था। परन्तु मोची साहब को गाने का बड़ा शौक था। जूते बनाता तो गाता, खाली बैठता तो गाता, इस प्रकार वह अपना अपनी स्त्री और अपने बच्चों का चित्त प्रसन्न किया करता था।

उसके पड़ोस में एक महाजन रहता था जिसे रात भर निद्रा नहीं आती थी। यदि पिछले पहर नींद आ भी जाती तो मोची साहब अपना राग छेड़ कर जगा देते थे। महाजन को रात दिन यही रोना रहता था कि मुझे नींद नहीं आती वह जिस वस्तु को चाहता अपने रुपये से मोल ले लेता परन्तु नींद एक ऐसी वस्तु है, जिसको मोल भी नहीं ले सकता था।

एक दिन महाजन ने मोची से पूछा—"क्यों भाई तुम साल भर में कितना रुपया पैदा करते हो।" मोची ने मुस्करा कर उत्तर दिया—"मैंने कभी गिना नहीं है, परन्तु किसी न किसी प्रकार दिन कटते ही जाते हैं, परमेश्वर नित्य प्रति भोजन दे देता है।"

महाजन ने उस से कुछ और बातें पूछीं और तत्पश्चात् मोची को सौ रुपये देकर विदा किया और कहा कि इन

रुपयों को सम्भाल कर खर्च करना। मोची सौ रुपये पाकर इतना प्रसन्न हुआ मानो दुनियाँ की न्यामतें हाथ लग गईं। वह रुपयों को अपने घर ले आया और उन्हें धरती में गाड़ दिया, रुपये मिलने से मोची साहब प्रसन्न तो हुए परन्तु, उन का गाना-वाना सब जाता रहा। रुपये का इतना ध्यान हो गया कि रात्रि दिन नींद नहीं आती थी, यदि अचानक पास से बिल्ली भी गुजरे तो चोर का ही सुभा होता था।

अन्त में दिक होकर बिचारा मोची महाजन के पास गया और कहने लगा—सेठजी आप अपना रुपया ले लीजिए और मेरी नींद मुझे वापस कर दीजिए।

६३—ज़रा से अविचार से विशेष हानि

दो मनुष्य जहाजी कारखाने में मिल कर लकड़ी चीर रहे थे। लकड़ी चीरते समय लकड़ी में एक छोटा सा कीड़ा दिखाई दिया, कठिनता से आध इंच लम्बा होगा।

एक मनुष्य ने कहा—"इस लकड़ी के टुकड़े में घुन लग रहा है क्या इसको जहाज में लगादें।"

दूसरा मनुष्य बोला—"कोई हानि नहीं, दिखाई तो देगा नहीं, लगादो।"

पहला मनुष्य फिर बोला—"सच है, यदि यह आगे जाकर घुन गया तो किसी समय जहाज के नाश हो जाने ? सम्भावना है।

दूसरा बोला—"राम राम कहो, भला कहीं ऐसा हो सकता है। यह ठीक है कि टुकड़ा विशेष मूल्यवान नहीं है परन्तु इसे फेंक देना भी तो बुद्धिमत्ता नहीं है। दस बीस जगह घुन लगा होता तो कोई बात थी, घुन का खयाल मत करो।"

आखिर वह घुना हुवा लकड़ी का टुकड़ा जहाज में लगा दिया गया। दस वर्ष तक जहाज़ भली प्रकार चलता रहा, इतने दिनों में घुन भी इतना बढ़ गया था कि जहाज़ बिलकुल ही थोदा हो गया।

जब जहाज के कप्तान ने यह दशा देखी तो उसे वापस अपने देश भेजने का विचार हुआ क्योंकि जहाज़ में रेशम चाय आदि लदा हुआ था और बहुत से मुसाफिर भी सवार होने वाले थे। लौटते समय मार्ग में तूफान आया जहाज में छेद हो गया जिस के द्वारा पानी जहाज़ के भीतर भरने लगा। माझियों ने दिन रात पानी निकालने में परिश्रम किया, परन्तु पानी आना बन्द न हुआ जितना पानी निकलता उससे कहीं अधिक भीतर भर जाता। अन्त में जहाज पानी से भर गया और माल असबाब और मुसाफ़िरों को ले डूबा।

देखिए! जरा से अविचार से कितनी जानें गईं यदि जहाज़ बनाते समय ही घुन का विचार कर लिया जाता तो क्यों इतनी हानि होती?

६४–एक बुढ़िया

एक गाँव के रहने वालों का यह विचार था कि यहाँ सदा गों नाम का भूत रहता है, जो मनुष्यों को मार डालता है।

यथार्थ में बात यह थी कि एक समय कोई चोर घटा चुरा कर लिए जा रहा था, एक चीते ने उसका पीछा किया वह घटा उस चोर के हाथ से गिर पड़ा जिसे बन्दर उठा कर ले गए और कभी उसे बजा देते थे।

आदमी के मारे जाने का समाचार और घंटे के शब्द को सुन कर मनुष्य भयभीत हो गए उन्होंने यह प्रसिद्ध कर दिया कि जब घटाकर्ण भूत को क्रोध आता है तो वह मनुष्यों को मार डालता है और घटा बजाता है। भय के कारण गाँव वाले गाँव छोड़ छोड़ कर भग गए।

एक बुढ़िया इस बात की टोह में थी, उसको खोज करने से मालूम हो गया कि भूत कुछ नहीं है किन्तु बन्दर घटा बजाया करते हैं। वह गाँव के मुखिया के पास गई और बोली—"ठाकुर साहब! यदि आप मुझे कुछ पारितोषिक दें तो, मैं घटाकर्ण को यहाँ से भगा सकती हूँ।" बुढ़िया की बात सुन कर मुखिया बड़ा प्रसन्न हुआ और कुछ धन उसे पारितोषिक रूप से दिया।

बुढ़िया कुछ फल लेकर बन में पहुँची और बन्दरों को खिलाए। इधर बन्दर भी फल खाने के लिए झुके तो उधर उनके हाथ से घटा गिर पड़ा।

बुढ़िया घटा लेकर गाँव में वापस आगई उस दिन से घटा बजना बन्द हो गया और बुढ़िया की आव भगत होने लगी॥

६५—दमन

एक बार लन्दन के किसी व्यापारी का एक महात्मा से झगड़ा हो गया। वह महात्मा उस व्यापारी के घर पहुँचा और चाहा कि शान्ति से लेन देन का मुआमला तय करले और अदालत में न जाना पड़े। व्यापारी ने उसे दूर से आते देख कर गालियाँ दीं और अपने नौकर से कहा, उससे कहदो "हम नहीं मिलेंगे"।

महात्मा ने द्वार पर पहुँच कर शान्ति से उत्तर दिया—"मित्र! परमात्मा तुम्हारे मनको सुमार्ग पर लावे।" इस उत्तर को सुन कर व्यापारी उस महात्मा के वशीभूत होगया, उसने महात्मा को भीतर बुलाया और अपनी क्रूरता के लिए क्षमा माँगी और पूछा कि—"आप शान्ति से गालियों को कैसे सह लेते हैं?" महात्मा ने कहा—"मित्र! स्वभाव से मैं भी बड़ा गरम था परन्तु मैं जानता था, ऐसा स्वभाव पाप के गड्ढे में गिरा देने वाला है। मैंने दृढ़ सङ्कल्प कर लिया कि मैं ऊँचा न बोलूँगा। क्योंकि विषयी मनुष्य प्रायः जामे से बाहर हो जाते हैं। तब मैंने नियम बना लिया कि इतने से ऊँचा नहीं बोला करूँगा केवल इसी एक साधन से मैंने अपने आप को वश कर लिया है।" पाठक! हमारे भीतर हर समय तूफान उठते रहते हैं। बाह्य इन्द्रियाँ हमे विषयों की ओर आकर्षित करती हैं और हमारे अन्दर अशान्ति उत्पन्न कर देती हैं। अशान्त-चेता पुरुष कभी भी किसी कार्य को उत्तमता से नहीं कर सकता। संसार में जितने भी महात्मा प्रादुर्भूत हुए हैं उन्होंने सर्वदा जगत को जीतने से अधिक कठिन अपने आप को जीत लेना ही माना है। इसे शास्त्र में दमन कहते हैं।

अँगूठी निकल पड़ी। इधर वह फांसी पर चढ़ायी गयी उधर अँगूठी को लेकर मनुष्य भागते २ फाँसी के स्थान पर पहुँचे और ज़ोर से कहने लगे अंगूठी मिल गई उसे फांसी मत दो।, लोगों ने स्त्री को बुलाया, परन्तु वह न बोली वह मर चुकी थी। लोगो ने उसी स्थान पर उसका स्मारक बना दिया और शताब्दियों तक जब २ मनुष्य उसके स्मारक को देखते तो निर्दयी राजा को कोसते थे।

पाठक! पवित्रता बलात्कार से लोगों के हृदयों में स्थान कर लेती है। यह एक आकर्षण शक्ति बन जाती है। दूर दूर से दुरात्मा लोग अपनी कालिमा को छुड़ाने के लिए जिस की ओर आकर्षित हो जाते हैं। ससार में जितने धर्मनिष्ठ पुरुष हुए हैं उनके हृदय मे शौच (शुद्धि) अतिशय विद्यमान थी।

६८—इन्द्रिय निग्रह

एक बार एक किसान की स्त्री अपने बच्चे को लेकर किसी काम मे खेत पर गई। वहाँ जाकर स्त्री ने अपने बच्चे को सुला दिया और स्वय कार्य में तत्पर होगई। उस सोते बच्चे को हुमायु उठा कर उड़ गया और एक दुरोह पर्वत के शिखरस्थ वृक्ष पर अपने घोंसले मे जा रक्खा, इस भयानक दशा को देख कर, बच्चे की माता पीछे पीछे भागी किसान भी अपना अपना कार्य छोड़ कर बच्चे को छुड़ाने के लिए दौड़े। भागते भागते वे सब एक भयानक गढ़े के किनारे पर जा पहुँचे, किसान बच्चे को बचाने के लिए अपनी जान जोखों में डालने के लिए तयार थे। परन्तु उस दुरुह शिखर पर

चढ़ना विशेष कठिन था। एक किसान ने ऊपर जाने की हिम्मत की परन्तु निराश हो वापस लौट आया, इसी भाँति अन्य किसानों ने भी चढ़ने का साहस किया परन्तु अपने अपने मनसूबे में कोई भी कृतकार्य न हुआ। दीर्घ साँस लेने लगे, अन्त में दूसरी ओर एक स्त्री को चढ़ते हुए देखा जो चट्टान से होकर बराबर आगे बढ़ी चली जाती थी। नीचे से सब के हृदय कम्पित हो रहे थे, कि वह स्त्री पर्वत के शिखर पर जा चढ़ी प्रसन्नता से बच्चे को उठा कर दृढ़ता से बच्चे को अपनी छाती से लगा लिया, अब वही स्त्री बच्चे को लेकर पर्वत के शिखर से उतरने लगी, नीचे से सब डर रहे थे और कहते थे कि बच्चे सहित नीचे गिर कर चकनाचूर हो जायगी परन्तु वह निरभीकता पूर्वक नीचे उतर आई। पाठक ! जहाँ सभी किसानों का साहस निष्फल गया वहाँ एक अबला अपने कार्य में कृतकार्य हुई, यह क्यों ? इस लिए कि वह बच्चे की माता थी और उसके प्रेम के सामने सारी इन्द्रियाँ वश में हो चुकी थीं, न्यूनाधिक विवेकी पुरुष अपनी इन्द्रियों को काबू करके जगत में अटल कीर्ति को प्राप्त करते हैं।

६६—मेरा स्वप्न

एक रात को मैं सोया तो अजीब ख्वाब देखा।
　　वो ख्वाब मैंने देखा साहिब पुर इज तराब देखा॥
आते हैं कुछ तनावर और लम्बे पालवाले।
　　सब क्रीट मुकुटधारी सूरज महताब देखा

पहले हैं रामरघुकुल भूषण वो सीता माता।
लक्ष्मण कमान खींचे और पुर अताब देखा ॥
पीछे हैं कृष्ण उनके और साथ पाँचो पाँडव।
गर्दन झुकाये सबको चशमे पुर आब देखा ॥
हैरान होके उनसे पूछा कि आलि जाहा।
यह माजराही क्या है जो मैं जनाब देखा ॥
स्वामी हो सब जगत् के सब दुनियाँ सर झुकाए।
चेहरों पै फिर तुम्हारे गम बे हिसाब देखा ॥
तब राम मुझसे बोले सुन ओ ? नादान बच्चे।
सन्तान को हमने अपनी बे दाना आब देखा ॥
लागार बदन हैं सबके मुँह पर है छाई जर्दी।
व्यभिचारी सब जमाना खाना खराब देखा ॥
लक्ष्मण जी बोले असुरों से भूमि की थी खाली।
पौधा फिर आज हमने उनका शहराब देखा ॥
सन्तान देवतों की सब कर्म राक्षसों के।
हा शोक! मांस खाते पीते शराब देखा ॥
लक्ष्मण न कह चुके थे भगवान् कृष्ण बोले।
भारत का हाल हमने भी ला जवाब देखा ॥
वेदों का पाठ करना गीता का ज्ञान छोड़ा।
हा! हीरे सोहनीलैला पढ़ते किताब देखा ॥
अर्जुन वो भीम बोले वीर्य वो बल को खोया।

बच्चों के ऐनके और लगते खिजाप देखा ॥
हिम्मत यहाँ तलक है चूहों मे डर के भागें ।
नामों पै तो बहादुर लगते खिताब देखा ॥
हितकर जो इनका आया उसको जहर पिलाया ।
भारत निवासियों को हा हा ! कमाब देखा ॥
जिन्दे पिता के आगे बेटे लगे हैं मरने ।
मुमकिन न था कभी भी जो इन्क़लाब देखा ॥
आज्ञाओं को बड़ों की नहीं मानता है कोई ।
दुःखों में फिर तड़फते सबको बेताब देखा ॥
कर जोड़ करके पूछा भगवन दया बता दो ।
दुःख में जो देश भारत यों पुर अजाब देखा ॥
बिन ब्रह्मचर्य विद्या और धर्म के परखे ।
सुधरेगा न कदापि भारत खराब देखा ॥

१००—शत लोकोक्ति

१ अधजल गगरी छलकत जाय—ओछा पुरुष ही होता है
२ आप काज महा काज—अपना कार्य अपने हाथ ही अच्छा होता है ।
३ आगे नाथ न पीछे पगहा—आगे पीछे कोई नहीं
४ आँधी के आम हैं—थोड़े दिन का काम है ।
५ आहार व्यवहार में लज्जा कैसी—लज्जा से

६ आप मरे जग परला—अपना स्वार्थ सब से प्रथम देखा जाता है।
७ आँखों के अन्धे नाम नैन सुख—गुणों के विरुद्ध नाम।
८ ईद के चाँद होगये—तुम्हारे दर्शन भी नहीं होते।
९ उल्लू की दुम फाखता—बे जोड़ कथा।
१० ऊँट के मुँह में जीरा—पेटू का थोड़ी चीज़ से क्या होता है
११ ऊँची दूकान फीका पकवान—नाम विशेष काम थोड़ा।
१२ ऊधो तुम्हें हारना जाना है—आखिर तुम्हें ऐसा करना है।
१३ अन्धों में काना सरदार—मूर्खों में थोड़ा जानने वाला चतुर होता है।
१४ अन्धेर नगरी अनबूझ राजा—महा अन्याय होता है।
१५ अन्धी पीसे कुत्ते खायँ—कुछ प्रबन्ध नहीं।
१६ कमाऊ पूत किसे अच्छा नहीं लगता - काम करने वाले को सब चाहते हैं।
१७ कभी नाव लट्ठे पर कभी लट्ठा नाव पर—संयोग से एक दूसरे को मदद की आवश्यकता है।
१८ काठ की हाँडी एक बार ही चढ़ती है—धोखे से काम बारम्बार नहीं होता।
१९ काले के आगे दिया नहीं जलता—बलवान् के आगे निर्बल कुछ नहीं कर सकता।
२० कागा चले हँस की चाल—बिना समझे अनुकरण करना।
२१ बाबुल गये मुगल बन आये, बोलन लाग बानी
२२ आब २ कर मर गये सिर धाने धरि हो पानी
—किसी की अनुचित नक़ल करना।

२३ काबुल में गधे नहीं होते क्या ?—अच्छी जगह भी बुरे होते हैं।
२४ काम को काम सिखाता है—करते २ काम आजाता है।
२५ किस विर्ते पर तत्ता पानी—किस भरोसे पर कार्य छेड़ा था।
२६ कानी के विवाह में सौ जाखो—जिस कार्य मे शका हो उस में विघ्न हो जाता है।
२७ कुछ दाल में काला है—सन्देह है।
२८ कगाली मे आटा गीला—दु ख पर दु ख पड़ना।
२९ खरी मॅजूरी चोखा काम—पूरे दाम देना और अच्छा काम लेना।
३० खलीफ़ा ने फ़ारखना माँगली—छोटे काम पर घमंड करना।
३१ खिचड़ी खाते पौंचा उतरा—बड़ा ही कामज है।
३२ खेती खसम सेती—अपने हाथ से खेती अच्छी होती है।
३३ गधो को गुलकन्द
३४ गॅवार को पापड़ } अपात्र को पात्र समझना।
गया वक्त फिर हाथ आता नहीं—समय पर चूकना नहीं चाहिए।
गाँव गये की बात—जैसा हो जाय।
घर का भेदी लका ढावे—आपस की फूट से बड़ी हानि होती है।
र ब्याह यह कड़ो को डोले—काम के समय पर लापरवाही करना।
के पीरों को तेल का मलीदा—अपनों का आदर न करना।
ते ही नाक कटी—बुरे काम का बुरा फल मिलता है
पर रखं दर को, नहीं ले गया—स्वप्न खोमन

६ आप मरे जग परलो—अपना स्वार्थ सब से प्रथम देखा जाता है।
७ आँखों के अन्धे नाम नैन सुख—गुणों के विरुद्ध नाम।
८ ईद के चाँद होगये—तुम्हारे दर्शन भी नहीं होते।
९ उल्लू की दुम फाखता—बे जोड़ कथा।
१० ऊँट के मुँह में जीरा—पेटू का थोड़ी चीज़ से क्या होता है।
११ ऊँची दूकान फीका पकवान—नाम विशेष काम थोड़ा।
१२ ऊधो तुम्हें होरका जाना है—आखिर तुम्हें ऐसा करना है।
१३ अन्धों मे काना सरदार—मूर्खों में थोड़ा जानने वाला चतुर होता है।
१४ अन्धेर नगरी अनबूझ राजा—महा अन्याय होता है।
१५ अन्धी पीसे कुत्ते खायँ—कुछ प्रबन्ध नहीं।
१६ कमाऊ पूत किसे अच्छा नहीं लगता—काम करने वाले को सब चाहते हैं।
१७ कभी नाव लट्ठे पर कभी लट्ठा नाव पर—संयोग से एक दूसरे को मदद की आवश्यकता है।
१८ काठ की हाँडी एक बार ही चढ़ती है—धोखे से काम बारम्बार नहीं होता।
१९ काले के आगे दिया नहीं जलता—बलवान् के आगे निर्बल कुछ नहीं कर सकता।
२० कागा चले हँस की चाल—बिना समझे अनुकरण करना।
२१ काबुल गये मुगल बन आये, बोलन लागे बानी
२२ आब आब कर मर गये सिर हाने धरि हो पानी
} किसी की अनुचित नकल करना।

२३ काबुल में गधे नहीं होते क्या ?—अच्छी जगह भी बुरे होते हैं।
२४ काम को काम सिखाता है—करते २ काम आजाता है।
२५ किस विर्ते पर तत्ता पानी—किस भरोसे पर कार्य छेड़ा था।
२६ कानी के विवाह मे सौ जोखो—जिस कार्य में शंका हो उस में विघ्न हो जाता है।
२७ कुछ दाल में काला है—सन्देह है।
२८ कगाली मे ग्राटा गीला—दुःख पर दुःख पड़ना।
२९ खरी मंजूरी चोखा काम—पूरे दाम देना और अच्छा काम लेना।
३० खलीफ़ा ने फाखता मारजी—छोटे काम पर घमंड करना।
३१ खिचड़ी खाते पोंचा उतरा—बड़ा ही कोमल है।
३२ खेती खसम सेती—अपने हाथ से खेती अच्छी होती है।
३३ गधों को गुलकन्द } अपात्र को पात्र समझना।
३४ गँवार को पापड़ }
३५ गया वक्त फिर हाथ आता नहीं—समय पर चूकना नहीं चाहिए।
३६ गाँव गये की बात—जैसा हो जाय।
३७ घर का भेदी लंका ढावे—आपस की फूट से बड़ी हानि होती है।
३८ घर ब्याह बहू कहाँ को डोलें—काम के समय पर लापरवाही करना।
३९ घर के पीरों को तेल का मलीदा—अपनों का आदर न करना।
४० छींकते ही नाक कटी—बुरे काम का बुरा फल मिलता है
४१ छानी पर रखा घर का नहीं हो गया—पथ्य लोभ न चाहिए।

८५ नानी तो क्वारी मरगई नवासे के नौ २ ब्याह—क्यों व्यर्थ शेखी मारता है।
८६ नीचे की साँस नीचे ऊपर की ऊपर—दंग रह जाना।
८७ नीयत की बरकत—ईमानदारी से धन वृद्धि।
८८ पढ़े तो हैं गुणी नहीं—व्यावहारिक अज्ञानता।
८९ पौ बारह है—खूब लाभ है।
९० पञ्चकहे सो बिल्ली सो बिल्ली—पञ्चों का झूठा कहना भी सच है।
९१ न्यारा पूत परोसी दाखिल—न्यारा रहने से अपना नहीं रहता।
९२ फूल न पाती देवी हा हा!—कोरी बातें बनाना।
९३ बजाज की गठरी झींगुर मालिक—दूसरों की वस्तु पर घमंड करना।
९४ दाने २ पर मुहर है—जिसके भाग्य का है उसे मिलता है।
९५ थूक का चाटना अच्छा नहीं—कह कर लौटना अच्छा नहीं।
९६ जो बोले सो घी को जाय—कहे सो करे।
९७ चूनी कहे मुझे घीसेजो—योग्यता से बढ़ कर दावा करना।
९८ चोली दामन का साथ छूट नहीं सकता—उनका साथ छूट नहीं सकता।

॥ इति ॥

